उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

हल्द्वानी

MAJY-506

द्वितीय सेमेस्टर

सिद्धान्त ज्योतिष एवं काल विवेचन-02

मानविकी विद्याशाखा

ज्योतिष विभाग

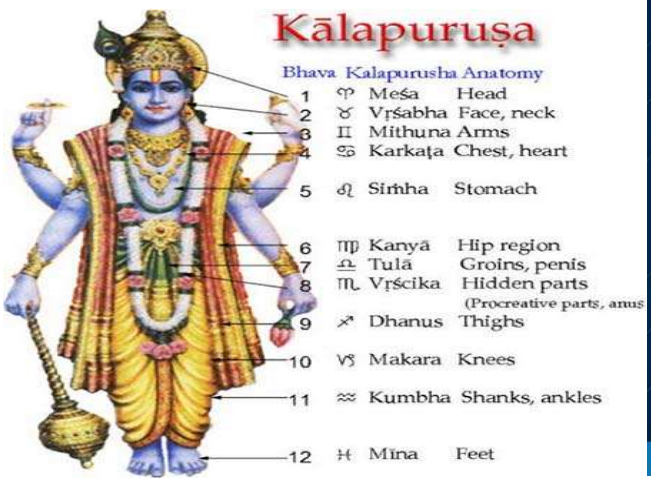

तीनपानी बाईपास रोड, ट्रॉन्सपोर्ट नगर के पीछे
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल - 263139
फोन नं. – 05946 - 261122 , 261123
टॉल फ्री न0 18001804025
Fax No.- 05946-264232, E-mail- info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

अध्ययन बोर्ड (फरवरी- 2020)

कुलपति (अध्यक्ष)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी

प्रोफेसर देवीप्रसाद त्रिपाठी
कुलपति, उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय
हरिद्वार

प्रोफेसर एच.पी. शुक्ल- (संयोजक)
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय
अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी।

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रोफेसर रामराज उपाध्याय
अध्यक्ष, पौरोहित्य विभाग, LBS नई दिल्ली।

पाठ्यक्रम सम्पादन एवं संयोजन

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड	इकाई संख्या
डॉ. शत्रुघ्न त्रिपाठी एसोसिएट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग, संस्कृतविद्या धर्मविज्ञान संकाय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी	**3**	**1,2,3,4,5**
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**4**	**1,2,3,4,5**

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष-2020
प्रकाशक - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।
मुद्रक: -
ISBN NO : -

नोट : - (इस पुस्तक के समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराइट संबंधी किसी भी मामले के लिये संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निस्तारण नैनीताल स्थित उच्च न्यायालय अथवा हल्द्वानी सत्रीय न्यायालय में किया जायेगा।)

MAJY-506 द्वितीय सेमेस्टर

सिद्धान्त ज्योतिष एवं काल विवेचन-02

अनुक्रम

तृतीय खण्ड – नवविध काल मान विवेचन	**पृष्ठ - 1**
इकाई 1: ब्राह्म, दिव्य एवं पैत्र्य मान विवेचन	2-13
इकाई 2: प्राजापत्य, बार्हस्पत्य एवं सौरमान	14-23
इकाई 3: सावन, चान्द्र एवं नाक्षत्र	24-35
इकाई 4: अहोरात्र व्यवस्था	36-48
इकाई 5: अधिमास एवं क्षयमास	49-62
चतुर्थ खण्ड – ग्रहानयन	**पृष्ठ-63**
इकाई 1: अहर्गण एवं मध्यम ग्रह साधन	64-79
इकाई 2: मन्दफल एवं शीघ्रफल	80-93
इकाई 3: उदयान्तर, देशान्तर एवं भुजान्तर	94–107
इकाई 4: क्रान्ति एवं चरान्तर विवेचन	108-121
इकाई 5: ग्रहस्पष्टीकरण	122-149च

एम.ए. ज्योतिष (MAJY-20)

द्वितीय सेमेस्टर

द्वितीय पत्र – सिद्धान्त ज्योतिष एवं काल विवेचन-02

MAJY-506

खण्ड - 3

नवविध कालमान विवेचन

इकाई - 1 ब्राह्म, दिव्य एवं पैत्र्य मान विवेचन

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 ब्राह्म मान

1.4 दिव्य मान

1.5 पैत्र्य मान

1.6 सारांश

1.7 पारिभाषिक शब्दावली

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई द्वितीय सेमेस्टर के द्वितीय पत्र MAJY-506 की प्रथम इकाई से सम्बन्धित है। काल की महिमा का वर्णन प्रायशः समस्त शास्त्रों में प्राप्त होता है। काल प्रतिपादक यह ज्योतिष शास्त्र समस्त काल के अङ्गों एवं उपाङ्गों का सम्यक् प्रकार से उपस्थापन करता है। अतएव इस काल के 9 प्रकार के मापक बताये गये हैं- 'कलसंख्याने' धातु से कर्ता अर्थ में घञ् प्रत्यय करने पर काल शब्द निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ गणना करना है। आर्ष ग्रन्थों में काल की विस्तृत चर्चा सूर्यसिद्धान्त में प्रतिपादित है। भगवान् भास्कर मय को उपदेश करते हुये काल के भेदोपभेद को बताते हैं। काल के दो रूप हैं। (1) विश्व का संहारकर्ता काल (2) गणनात्मक काल।

पुनः स्थूल काल या कलनात्मक काल के नौ भेद किये गये हैं।

यथा-

ब्राह्मं दिव्यं तथा पैत्र्यं प्राजापत्यं च गौरवम्।
सौरं च सावनं चान्द्रमार्क्षं मानानि वैर्नव।।

(सूर्यसिद्धान्त, मानाध्याय, श्लोक सं.-01)

1.ब्राह्म 2. दिव्य 3. पैत्र्य 4. प्राजापत्य 5. गौरव 6. सौर 7. सावन 8. चान्द्र 9. एवं नाक्षत्र।

परन्तु इन नौ मानों में से चार के द्वारा ही हमारे लौकिक कार्यों की सिद्धी हो जाती है। शेष 5 कालमानों का व्यवहार ज्योतिष शास्त्र के विविध विषय प्रतिपादन में किया जाता है।

1.2 उद्देश्य

इस पाठ के निम्नलिखित उद्देश्य हैं -

(क) कालमान के ज्ञान में दक्षता प्राप्त होगी।

(ख) ब्राह्म-मान के औचित्य एवं वैशिष्ट्य का परिज्ञान होगा।

(ग) देवताओं के मान का ज्ञान सरलता से होगा।

(घ) पैत्र्य-मान परिज्ञान में कुशलता प्राप्त होगी।

(ङ) नवविधकालमान के औचित्य के निर्धारण में दक्षता प्राप्त होगी।

1.3 ब्राह्ममान-

अर्थतया स्पष्ट होता है कि ब्रह्म से संबंधित मान को ब्राह्ममान कहते हैं। नौ प्रकार के मानों में यह काल का सबसे बड़ा मान खंड है। भगवान् भास्कर इस मान के सन्दर्भ में कहते हैं कि-

तद् द्वादशसहस्राणि चतुर्युगमुदाहृतम्।

सूर्याब्दसंख्यया द्वित्रिसागरैरयुताहतैः।।
सन्ध्यासन्ध्यांश-सहितं विज्ञेयं तच्चतुर्युगम्।
कृतादीनां व्यवस्थेयं धर्मपादव्यवस्थया।।
युगस्य दशमो भागश्चतुस्त्रिद्व्येकसंगुणः।
क्रमात् कृतयुगादीनां षष्ठांशः सन्ध्ययोः स्वकः।।
युगानां सप्ततिः सैका मन्वन्तरमिहोच्यते।
कृताब्दसंख्या तस्यान्ते सन्धिः प्रोक्तो जलप्लवः।।
ससन्धयस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दशः।
कृतप्रमाणः कल्पादौ सन्धिपंचदशः स्मृतः।।
इत्थं युगसहस्रेण भूतसंहारकारकः।
कल्पो ब्राह्ममहः प्रोक्तं शर्वरी तस्य तावती।।

सूर्यसिद्धान्त, मध्यमाधिकार, श्लोक सं. - 15-20

यहाँ आशय यह है कि रवि का एक भगण भोग का काल एक सौरवर्ष होता है। इसी को एक दिव्यदिन भी कहते हैं।

360 दिन = 1 वर्ष = 1 दिव्यदिन।

360 दिव्यदिन = 1 दिव्यवर्ष।

इसी कालप्रमाण से 12000 वर्ष = चतुर्युग।

12000 ग 360 = 43,20,000 सौरवर्ष।

पुनः चारों युगों का मान अलग अलग लाने के लिए-

कृतयुग में धर्मपाद = 4 त्रेता में धर्मपाद = 3

द्वापर में धर्मपाद = 2 कलियुग में धर्मपाद = 1

इनका योग = 10 धर्मपाद। इसलिए अनुपात के द्वारा

(महायुग ग 4) / 10 = कृतयुग का मान

(महायुग ग 3) / 10 = त्रेता का मान

(महायुग ग 2) / 10 = द्वापर का मान

(महायुग ग 1) / 10 = कलियुग का मान

यहाँ कहा गया है कि कृतयुगादिकों के षष्ठांश तुल्य सन्धियां होती हैं और चारों युगों का मान उनके सन्ध्या तथा संध्यांश से युक्त है।

71 महायुग = 1 मनु

एक कल्प में = 14 मनु

71 ग 14 = 994 महायुग

= 1 कल्प

कृतवर्षप्रमाणतुल्य मनु की सन्धि होती है। इसलिए मनुओं की सन्धि संख्या पन्द्रह होती है।

1 मनुसन्धि = कृतयुग 1 इसका महायुगात्मक मान लाते हैं तो

(महायुग ग 4) / 10 = कृतयुग = 1 मनुसन्धि

(महायुग ग 4 ग 15) / 10 = 15 मनुओं की सन्धि का मान।

= 6 महायुग

1 कल्प = 14 मनु $ 15 सन्धि

= 14 ग 71 महायुग $ 6 महायुग

= 1000 महायुग

= एक ब्राह्मदिन।

इसी प्रकार ब्रह्मा की रात्रि भी 1 कल्प की होती है। अतः अहोरात्र = 2 कल्प।

इस मान से ब्रह्मा को शतायु कहा गया है। जिन चौदह मनुओं की चर्चा यहाँ की गयी है वे-

स्वायम्भुवो मनुस्ततो मनुः स्वारोचिषस्तथा।
उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा।।
वैवस्वतश्च कौख्य साम्प्रतो मनुरुच्यते।
सावर्णि मनुस्ततो रौद्रो रौच्यस्तथैव च।।
तत्रैव मेरुसावर्णश्चत्वारो मनवः स्मृताः।

महाभारत, खि.ह.अ. 7, श्लोक सं.-4-3

अर्थात् (1) स्वायम्भुव (2) स्वारोचिष (3) उत्तमज (4) तामस (5) रैवत (6) चाक्षुष (7) वैवस्वत (8) सावर्णि (9) दक्षसावर्णि (10) ब्रह्मसावर्णि (11) धर्मसावर्णि (12) रुद्रपुत्र (13) रौच्य (14) मौत्यक।

ब्रह्मदिनोपपत्ति - ब्राह्म मान के सन्दर्भ में उपपत्ति ज्योतिष के ग्रन्थों में वर्णित है जैसे आचार्य भास्कर कहते हैं कि -

यदतिदूरगतो द्रुहिणः क्षितेः सततमाप्रलयं रविमीक्षते।
भवति तावदयं शयितश्च तद्युगसहस्रयुगं द्युनिशं विधेः।।।।

अर्थात् -

पृथ्वी से अत्यन्त (अनन्त) दूर स्थित ब्रह्मा, आप्रलय पर्यन्त सूर्य दर्शन करता है अर्थात् ब्रह्मा का एक हजार युग का एक दिन और एक हजार युग की एक रात्रि अर्थात् 2 हजार युग प्रमाण का 1 दिन अर्थात् अहोरात्र होता है। दिनान्त के अनन्तर रात्रि शयन की तरह ब्रह्मा 1 हजार युग के दिनान्त में सारी सृष्टि का समापन कर एक कल्प तक शयन, करने के उपरान्त पुनः नवीन सृष्टि रचना और दूसरे कल्प का प्रारम्भ करता है। यहाँ उपपत्ति ज्ञान हेतु क्षेत्र का अवलोकन कर सकते है -

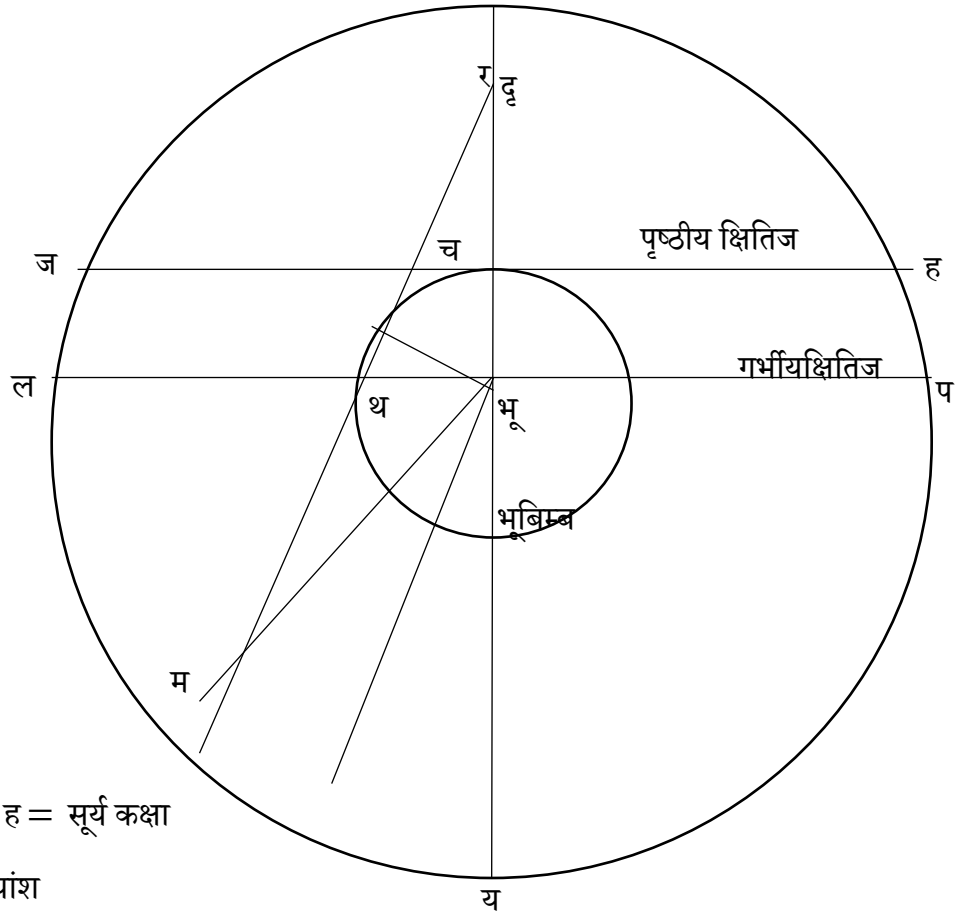

र ज म य प ह = सूर्य कक्षा

ल म = दृश्यांश

च ह = ह उ।

भू = भूकेन्द्र य थ भू ग = भू-बिम्ब।

24 अंश = जिनांश।

दृश्यांश = ल म।

जिनांश + कुच्छन कला = ज ल + ल म = योग।

अनुपात से $\frac{\text{भू व्या } \frac{1}{2} \times \text{त्रि}}{\text{योग कोटिज्या}}$

अतः योग-भू व्या द. = दृ उ = च दृ।

अर्थात् विषुवद्वृत्त रूप गर्भ क्षितिज से नीचे **24** अंश तक दृश्यांश मान मानकर इससे जो द्रष्टा की उन्नति च दृ तुल्य की भूगर्भ से ऊँचाई से द्रष्टा के दृष्टि पथ में सदोदित सूर्य दर्शन होता रहेगा।

अर्थात् मानव मान के एक सहस्र युग में आकाश कक्षा सम्बन्धीय क्षितिज में सूर्य का अस्त, पुनः इतने ही काल तक अन्धकार जिसे महाप्रलय कहते हैं होता रहता है। इसी को एक कल्प कहिए। दूरद्रष्टा ऋषियों की बुद्धिस्थ इस खगोल ज्ञान के आधार पर, ही ''पुराकल्पेऽपि'' पूर्व कल्प में भी ''ऐसा होता था'' इत्यादि विषय में सविशेष कहा गया है।

आचार्य भास्कर इस विषय में कहते हैं कि-

खखाभ्रदन्तसागरैर्युगाग्नियुग्मभूगुणैः।
क्रमेण सूर्यवत्सरैः कृतादयो युगाङ्घ्रयः।।21।।
स्वसन्ध्यकातदंशकैर्निजार्कभागसंमितैः।
युताश्च तद्युतौ युगं रदाब्धयोऽयुताहताः।।22।।
सन्धयः स्युर्मनूनां कृताब्दैः समा आदिमध्यावसानेषु तैर्मिश्रितैः।
स्याद्युगानां सहस्रं दिनं वेधसः सोऽपि कल्पो द्युरात्रन्तु कल्पद्वयम्।।24।।
शतायुः शतानन्द एवं प्रदिष्टस्तदायुर्महाकल्प इत्युक्तमाद्यैः।
यतोऽनादिमानेष कालस्ततोऽहं न वेद्म्यत्र पद्मोद्भवा ये गतास्तान्।।25।।

-सि.शि., मध्यम.

अर्थात् 4,32,000 (सौरवर्ष) को क्रम से 4, 3, 2 एवं 1 से गुणा करने पर क्रम से सत्ययुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग के मान होते हैं।।21।।

(1) 4,32,000 × 4 = 17,28,000 सत्ययुग

(2) 4,32,000 × 3 = 12,96,000 त्रेतायुग

(3) 4,32,000 × 2 = 8,64,000 द्वापरयुग

(4) 4,32,000 × 1 = 4,32,000 कलियुग

विशेष- आचार्य भास्कर ने यहाँ युग शब्द से चतुर्युग (सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि) को ग्रहण किया है तथा पृथक्-पृथक् युगों के लिए युगचरण संज्ञा प्रदान किया है।

यहाँ धर्म के 10 चरण (लक्षण) को स्वीकार करते हुए पूर्वाचार्यों ने पृथक्-पृथक् युगों के लिए धर्म के चरणवश युग के मान का निर्धारण किया है। उससे यह परिलक्षित होता है कि युग का परम मान धर्म-चरण के आधार पर ही आधारित है। यथा सत्ययुग में धर्म के 4 चरण (पूर्ण) विद्यमान रहते हैं, अर्थात् अधर्म नहीं होता। त्रेता में 3 पाद, द्वापर में 2 पाद एवं कलियुग में केवल 1 पाद ही धर्म का विद्यमान रहता है। जिसमें शुभाशुभ धर्माधर्म के आधार पर ही 4 युगों का मान निश्चित किया गया है।

अपने-अपने युगचरण के बारहवें भाग के बराबर आद्यन्त में सन्ध्या एवं सन्ध्यांश होते हैं जिनको युगप्रमाण में जोड़ते हैं तो एक युगप्रमाण में 43,20,000 सौरवर्ष होते हैं।

विशेष- यहाँ आचार्य ने प्रत्येक युगचरण का 1/12 आदि सन्ध्या तथा 1/12 भाग अन्त सन्ध्या माना है, यह सन्ध्या और सन्ध्यांश युगमान में जुड़ा हुआ रहता है जिस प्रकार एक अहोरात्र में प्रातः और सायं दो संध्यायें होती हैं वैसे ही चतुर्युग के प्रत्येक युगादि एवं युगान्त में मिलाकर 2 सन्ध्यायें होती हैं जिसे यहाँ आदि एवं अन्त नाम से सम्बोधित किया गया है। इस प्रकार यदि सन्ध्या-सन्ध्यांश का आनयन करते हैं तो पाते हैं कि सत्ययुग = 17,28,000 सौरवर्ष,

$$\text{अतः } \frac{17,18,000}{12} = 1,44,000 \text{ आदि सन्ध्या}$$

तथा 1,44,000 सौरवर्ष अन्त में सन्ध्या होता है।

इस प्रकार सौरवर्ष प्रमाण से-

त्रेतायुग = 1,08,000 आदि सन्ध्या + 1,08,000 अन्त सन्ध्या

द्वापरयुग = 72,000 आदि सन्ध्या + 72,000 अन्त सन्ध्या

कलियुग = 36,000 आदि सन्ध्या + 36,000 अन्त सन्ध्या

इस प्रकार 71 युग का मनु होता है अर्थात् 71 युगप्रमाण का 1 मन्वन्तरकाल होता है। ऐसे 14 मनु के द्वारा ब्रह्मा का 1 दिन तथा तत्तुल्य अर्थात् 14 मन्वन्तर प्रमाण की ही रात्रि होती है।

मनुओं के आदि-मध्य और अन्त में सत्ययुग के बराबर (वर्ष संख्या) सन्धियाँ होती हैं। इन सन्धियों को जोड़ने पर 1 हजार युग का ब्रह्मा का दिन होता है। उसे ही कल्प कहा जाता है। ब्रह्मा का अहोरात्र (रात-दिन) दो कल्प (2 हजार युग) प्रमाण का होता है।

विशेष- आचार्य ने प्रस्तुत श्लोक के द्वारा पूर्व में बताये गये श्लोक की संगति को पूर्ण करके तथा ब्राह्म दिन प्रमाण का उल्लेख किया है।

पूर्वोक्त प्रकार से ब्रह्मा की सौ वर्ष (100) की आयु बताई गई है। इस आयु को प्राचीनाचार्यों

ने महाकल्प की संज्ञा दी है। क्योंकि काल (ब्रह्म) अनादि है। अतएव कितने ब्रह्मा बीत गये और कितने वर्तमान हैं, उन्हें मैं नहीं जानता।

इस श्लोक में आचार्य भास्कर ने व्यंग्य प्रस्तुत किया है। जैसा कि सौर सिद्धान्त में बताया गया है कि 'आयुषोऽर्धगतम्' अर्थात् उस ब्रह्मा की आधी आयु व्यतीत हो गयी है। अतएव भास्कराचार्य ने इसी स्थल पर व्यंग प्रस्तुत किया है कि जिस काल का मान अनादि है उसके कितने वर्ष व्यतीत हो गये। इसे मैं नहीं जानता। यथा -

तथा वर्त्तमानस्य कस्यायुषोऽर्धं गतं सार्धवर्षाष्टकं केचिदूचुः।
भवत्वागमः कोऽपि नास्योपयोगो ग्रहा वर्त्तमानद्युयातात् प्रसाध्याः।।26।।

अर्थात्- वर्तमान ब्रह्मा की आधी आयु व्यतीत हो गई है, कुछ लोग 8.5 वर्ष व्यतीत मानते हैं। अस्तु, यहाँ कोई भी आगम (प्रमाण) हो परन्तु इसका कोई विशेष उपयोग शास्त्र में नहीं देखा जाता। ग्रहसाधन सर्वदा वर्तमान ब्रह्मदिन के गताब्द पर से ही करना चाहिए।

विशेष- यहाँ पूर्वोक्त विशेष की ही पुष्टि करते हुए आचार्य ने युक्ति बताई कि ब्रह्मा की आधी आयु बीते या 8.5 वर्ष, इससे ग्रहगणना के व्यवहार में कोई अन्तर नहीं आता है। अतः ग्रहानयन वर्तमान ब्रह्मदिन के आधार पर ही करना चाहिए।

यतः सृष्टिरेषां दिनादौ दिनान्ते लयस्तेषु सत्स्वेव तच्चारचिन्ता।
अतो युज्यते कुर्वते तां पुनर्येऽप्यसत्स्वेषु तेभ्यो महद्भ्यो नमोऽस्तु।।27।।

-सि.शि., मध्यमा.

अर्थात् यद्यपि ब्रह्मा के दिनारम्भ से सृष्टि अर्थात् जगत् की संरचना होती है तथा दिनान्त में सभी भूतों का लय होता है। अतः विद्यमान दिन से ही ग्रहचारानयन जानना चाहिए। जो लोग असत् महाकल्प से इसे जोड़कर वर्तमान ग्रहों का मान लाते हैं, वैसे महान् लोगों को मेरा नमस्कार है।

विशेष- प्रस्तुत श्लोक में भी आचार्य जी ने जो लोग महाकल्प से ग्रहानयन करते हैं, उनका उपहास किया है।

1.4 दिव्यमान

'दिवि भवं दिव्यम्' अर्थात् देवताओं से संबंधित मान को दैवमान कहते हैं। दिव्य दिन का मान एक सौरवर्ष तुल्य होता है। जैसे-

360 सौरदिन = 1 सौरवर्ष।

1 सौरवर्ष = 1 दिव्य दिन।

360 दिव्य दिन = 1 दिव्य वर्ष।

सूर्यसिद्धान्तकार कहते हैं -

सुरासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात्।
यत् प्रोक्तं तद् भवेद्दिव्यं भानोर्भगणपूरणात्।।

सूर्यसिद्धान्त, भूगोलाध्याय, मानाध्याय, श्लोक सं.-20

देवताओं के दिन और रात्रि का मान तो तुल्य होता है किन्तु यहाँ विशेष यह है कि जब देवताओं का दिन होता है तब असुरों की रात्री तथा जब असुरों का दिन होता है तब देवताओं की रात्रि। इसका कारण यह है कि शास्त्रानुसार देवताओं का वास सुमेरु तथा दैत्यों का वास कुमेरु पर है। सुमेरु नाडीवृत्त से उत्तर दिशा में 900 दूरी पर तथा कुमेरु नाडीवृत्त से दक्षिण दिशा से 900 दूरी पर स्थित है। दोनों स्थानों के बीच की दूरी 1800 है। और दोनों के बीच में निरक्षदेश है तथा नाडीवृत्त ही दोनों का गर्भक्षितिज है। मेषादि छः राशियों की स्थिति नाडीवृत्त से उत्तर में तथा तुलादि छः राशियों की स्थिति नाडीवृत्त से दक्षिण में हैं। अतः यदि सूर्य मेषादि छः राशियों में संचरण करता है तो असुरों के क्षितिज के नीचे होने से उनकी रात्रि तथा यदि तुलादि छः राशियों में संचरण करता है तो देवों की रात्रि तथा दैत्यों का दिन होता है। इसी प्रकार दैत्यों एवं देवों के विपर्यय क्रम से छः महीने का दिन तथा छः महीने की रात्रि होती है। इसी एक सौरवर्ष प्रमाण को दिव्य दिन की संज्ञा दी गई है । देवताओ से सम्बन्धित हैं यह मान इसलिए दिव्य कहते हैं।

1.5 पैत्र्यमान-

पैत्र्यमान के प्रतिपादन के प्रसंग में भगवान सूर्य सूर्यसिद्धान्त में कहते हैं कि-

पित्र्यं मासेन भवति नाडीषष्टया तु मानुषम्।
तदेव किल सर्वत्र न भवेत् केन हेतुना।।

सूर्यसिद्धान्त, भूगोलध्याय, श्लोक सं.-5

अर्थात् पित्र्यदिन एकचान्द्रमास तुल्य होता है। मयासुर के प्रश्न के उत्तर में भगवान कहते हैं कि-

पितरः शशिगः पक्षं स्वदिनं च नरा भुवि।

सूर्यसिद्धान्त, भूगोलध्याय, श्लोक सं.-74

अर्थात् पितरों के लिए पन्द्रह तिथियों का एक दिन तथा पन्द्रह तिथियों की एक रात्रि होती है। दोनों का योग करने से एक चान्द्रमास तुल्य अहोरात्र होता है। आचार्य भास्कर भी इस प्रसंग में कहते हैं कि-

विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्तः
स्वाधः सुधादीधितिमामनन्ति

पश्यन्ति तेऽर्कं निजमस्तकोर्ध्वे
दर्शे यतोऽस्माद् द्युदलं तदैषाम्।
भार्धान्तरत्वान्न विधोरधस्थं
तस्मान्निशीथः खलु पौर्णमास्याम्।
कृष्णे रविः पक्षदलेऽभ्युदेति
शुक्लेऽस्तमेत्यर्थत एव सिद्धम्।।

सि.शि., गोलाध्य, त्रिप्रश्नवासना, श्लोक सं.-13-14

अर्थात् चन्द्रमा के ऊर्ध्व भाग में पितरों का वास होता है। अतः यदि सूर्य अमावस्या को जब चन्द्रमा के ठीक ऊपर होता है तब ये अवस्था पितरों का दिनार्ध तथा पूर्णिमा को पितरों की मध्यरात्रि होती है। इस प्रकार संक्रान्तियों के विभाजन के क्रम में 16 दिन के लिए विशेष रुप से पितृपक्ष के लिए निर्देशित किया गया है। जिसमें सभी प्रकार का किया गया दान जप अक्षय होता है जैसे -

तुलादेः षडशीत्यंशैः षडशीतिमुखं दिनम्।
भचतुष्टयमेवं स्याद् द्विस्वभावेषु राशिषु।।4।।
षड्विंशे धनुषो भागे द्वाविंशेतिमिनस्य च।
मिथुनेऽष्टादशे भागे कन्यायां च चतुर्दशे।।5।।

अर्थात् तुला संक्रान्ति से छियासी दिनों का षडशीति मुख क्रम से होता है। यह चार हैं और द्विस्वभाव राशियों में होते हैं। धनु राशि के 26वें अंश, मीन राशि के 22वें अंश, मिथुन राशिके 18वें अंश और कन्या राशि के 14वें अंश तक।

विशेष- इन श्लोकों में दिन का अर्थ सावन दिन नहीं है, वरन् वह समय है जिसमें सूर्य एक अंश चलता है। ऐसे 360 दिनों का एक वर्ष होता है जो सावनमानानुसार 365 दिन 6 घंटे से कुछ अधिक हुआ परन्तु सूर्य की गति सदा समान नहीं होती इसलिये चारों षडशीतिमुखों के मान भी सावन दिनों में समान नहीं हैं। तुला राशि से आरंभ करके तुला और वृश्चिक राशियों के तीस-तीस अंश और धनु के 26 अंश मिलकर 86 अंश हुए इसलिये प्रथम षडशीतिमुख धनु के 26 अंश पर समाप्त होता है। दूसरा षडशीतिमुख धनु के 27वें अंश से आरम्भ होकर मीन के 22वें अंश पर समाप्त होता है। इसी प्रकार तीसरा मिथुन के 18वें अंश पर और चौथा कन्या के 14वें अंश पर समाप्त होता है। जिन चारों राशियों में षडशीति मुखों का अंत होता है वे द्विस्वभाव की बतलायी गयी हैं जिसकी चर्चा फलित ज्योतिष में आयी है।

किसी किसी ग्रन्थ में तिमिनस्य के स्थान में निमिषस्य पाठ है जो अशुद्ध जान पड़ता है

क्योंकि निमिष का अर्थ मीन राशि नहीं है।

पितृपक्ष -

ततश्शेषे तु कन्याया यान्यहानि तु षोडश।

क्रतुभिस्तानि तुल्यानि पितृणां दत्तमक्षयम्।।6।।

अर्थात्- इसके उपरान्त कन्या राशि के शेष 16 दिन यज्ञकाल के समान हैं। इसमें पितरों का श्राद्धादि कर्म करने से अक्षय फल मिलता है।

विशेष- इससे प्रकट होता है कि पितरों का श्राद्ध उस समय करना चाहिये जब सूर्य कन्या राशि में 15 से 30 अंश तक हो। आजकल तो पूर्णिमान्त गणना से आश्विन कृष्ण पक्ष में और अमान्त गणना से भाद्र कृष्ण पक्ष में अर्थात् चान्द्रमान के अनुसार पितृपक्ष माना जाता है।

1.6 सारांश

कालमान के पहले बड़े मापक (ब्राह्म) की विस्तृत रूप से चर्चा की गई है।

युगों के मानों के साथ धर्मपाद की व्यवस्था ब्राह्म मान के लिए एक नूतनान्वेषण का विषय भी प्रतिपादित किया गया है।

देवताओं एवं दानवों के दिन व्यवस्था का समन्वय दिव्यमान के द्वारा सभेद बताया गया है।

पितरों के मान तथा उनके दिनादिमान एवं पितृपक्ष के निर्धारण का उपपत्ति भी वर्णित है।

प्रत्येक मान का सम्बन्ध एक दूसरे से सम्बन्धित होकर सर्वतोभावेन उपयोगी सिद्ध हो रहा है।

1.7 शब्दावली

सौर - सूर्य के एक अंश का चलन सौरदिक।

ब्राह्म - एक सबसे बड़ा काल मापक का प्रमाण।

पैत्र्य - चन्द्रपृष्ठोर्ध्व पितरों की दिनरात्रि व्यवस्था भी एक कालमान के प्रमापक के रुप में है।

सावन - एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय का काल सावनदिन कहलाता है।

चान्द्र - एक तिथ्यात्मक काल को चान्द्रदिन या मान कहते हैं।

1.**8 अभ्यास प्रश्न -**

(1) कालमान कितने प्रकार के हैं **?** - 9

(2) सबसे बड़ा कालमान कौन सा है**?** - ब्राह्म

(3) सत्ययुग का मान कितना है **?** - 17,28,000

(4) एक महायुग में ब्रह्मा का क्या होता है**?** - 1 दिन

(5) ब्रह्मा के अहोरात्र में कितने कल्प होते हैं**?** **-** 2 कल्प

(6) यद्यपि यह काल अनादि है किसकी उक्ति है **?** **-** भास्कराचार्य की

(7) ग्रह कहाँ से साधन करना चाहिए। - ब्रह्म के वर्तमान दिन से

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थसूची

नाम	लेखक	प्रकाशक
सूर्यसिद्धान्त		
सिद्धान्तशिरोमणि -		
ग्रहलाघवम् -		
सिद्धान्ततत्त्वविवेक -		
बृहद्दैवज्ञरंजनम् -	डॉ. मुरलीधर चतुर्वेदी	मोतीलाल बनारसीदास

इकाई - 2 प्राजापत्य, बार्हस्पत्य एवं सौरमान

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 प्राजापत्य मान

2.4 बार्हस्पत्य मान

2.5 सौर मान

2.5.1 सौरमान के प्रयोजन

2.5.2 सौर संक्रान्तियों के नाम

2.5.3 सौरमान से उत्तरायण, दक्षिणायन और ऋतु -

2.6 वृत्त चित्र

2.7 सारांशिका

2.8 बोध प्रश्नोत्तर

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना -

प्रस्तुत इकाई एम.ए. ज्योतिष द्वितीय सेमेस्टर के एमएजेवाई -506 से सम्बन्धित है। ज्योतिष शास्त्र कालविधान शास्त्र है, इसकी परिगणना मुख्यरुप से काल को लेकर ही की गई है। अतएव 9 प्रकार के कालमानों में इस पाठ के अन्तर्गत केवल 03 मान की चर्चा आपके समक्ष की जाएगी, जिसमें प्राजापत्यमान, बार्हस्पत्य मान एवं सौरमान हैं। पूर्व के जिन 4 मानों को मानव-व्यवहार योग्य बताया गया है उसमें सौर मान भी वर्णित है ऐसी परिस्थिति में बार्हस्पत्य एवं प्राजापत्य मान की प्रासंगिकता तथा स्वरुप पर इस पाठ में बृहत चर्चा की जाएगी। कुछ प्रधान उद्देश्यों की पूर्ति के साथ ही कुछ वैशिष्ट्य का उल्लेख भी यथावशर किया जाएगा। यद्यपि जो मुख्य रुप से मनु सम्बन्धित मान है उसे ही प्राजापत्यमान नाम से अभिहित किया गया है तथा मध्यम मान से वृहस्पति का 1 राशि का भोग काल ही बार्हस्पत्यमान या समवत्सर कहलाता है। सौरमान की प्रासंगिकता की वृहत् चर्चा भी आगे की जाएगी।

2.2 उद्देश्य -

(क) छात्रगण प्राजापत्यमान के व्यवहार से परिचित होगे तथा उसमें दक्षता प्राप्त होगी।

(ख) मनु-मान के व्यवहार को प्राजापत्य के साथ समन्वय में निपुणता प्राप्त होगी।

(ग) सम्वत्सरों के उद्भव के सन्दर्भ में कुशलता प्राप्त होगी।

(घ) सौरमान की परिभाषा तथा गणितीय स्वरुप का ज्ञान होगा।

(ङ) सौरमास तथा संक्रान्तियों के निर्माण में सौरमान के योगदान की भूमिका ज्ञान होगा।

2.3 प्राजापत्यमान -

प्रजापत्यमान के सन्दर्भ में सूर्यसिद्धान्तकार कहते हैं कि मन्वन्तर व्यवस्था को ही प्रजापत्यमान कहा जाता है।

मन्वन्तरव्यवस्था च प्राजापत्यमुदाहृतम्।
न तत्र द्युनिशोर्भेदो ब्राह्मं कल्पः प्रकीर्तितम्।।

(सूर्यसिद्धान्त, मानाध्याय, श्लोक सं.-21)

अर्थात् मन्वन्तर व्यवस्था को ही प्राजापत्य मान कहा जाता है। मनवन्तर व्यवस्था की चर्चा ब्राह्म मान में भी की गई है, ऐसी स्थिति में प्रसंगानुसार विचार करते हैं तो पाते हैं कि -

71 महायुग = 1 मनवन्तर

1 महायुग = चतुर्युग (सत्य, त्रेता, द्वापर एवं कलि)

इस प्रकार से कुल मनुओं की संख्या 14 है जिसमें 6 मनवन्तर का काल व्यतीत हो गया है तथा सातवें वैवस्न्त-मन्वन्तर चल रहा है। इस प्रकार ही सौरवर्ष प्रमाण में इनका गणितीय स्वरुप निम्नलिखित है-

2.4 बार्हस्पत्य (गौरव) मान -

बृहस्पतेर्मध्यमराशिभोगात् सांवत्सरं सांहितिका वदन्ति।
ज्ञेयं विमिश्रन्तु मनुष्यमानं मानैश्चतुर्भिर्व्यवहारवृत्तेः।।

- सि. शि. मध्यमा.

अर्थात् - संहिताशास्त्र के विद्वान् बृहस्पति के मध्यम मान से एक राशि भोगकाल को बार्हस्पत्य संवत्सर कहते हैं। मनुष्य का मान व्यवहारमिश्रित जानना चाहिए, जिसमें चार मानों के द्वारा मानव व्यवहार-वृत्ति सम्पादित होती है।

विशेष - इस श्लोक में आचार्य ने संवत्सर-निर्माण-प्रक्रिया को बताते हुए नवविध काल मानों में मानव व्यवहारोपयोगी चार मानों को बताया है।

मध्यम मान से बृहस्पति जब एक राशि का भोग कर लेता है तो एक संवत्सर का काल होता है। संवत्सर 60 होते हैं, पुनः 60 के बाद इनकी आवृत्ति होती है। मानव व्यवहार हेतु केवल एक मान कोई पर्याप्त नहीं है अपितु चार मान (सौर, सावन, चान्द्र, नाक्षत्र) व्यवहार के लिए उपयोगी होते हैं।

सूर्यसिद्धान्त में बार्हस्पत्य मान के सन्दर्भ में कहा गया है कि मध्यमगति से गुरु के एकराशि भोग को एक संवत्सर की संज्ञा दी गयी है। मानाध्याय में भगवान् सूर्य कहते हैं कि -

वैशाखादिषु कृष्णे च योगात् पंचदशे तिथौ।
कार्तिकादीनि वर्षाणि गुरोरस्तोदयात् तथा।।

सूर्यसिद्धान्त, मानाध्याय, श्लोक सं.-27

अर्थात् वैशाखादि मासों से कृष्णपक्ष की 30वीं (अमावस्या) तिथि को कृत्तिकादि नक्षत्रों के संयोग से बार्हस्पत्य कार्तिकादिमास होते हैं। इस प्रकार से जिस मास में गुरु अस्त या उदय होता है उस मास से संबंधित बृहस्पति का वर्ष प्रारम्भ होता है।

जिस मास में गुरु उदय या अस्त हों उस मास के अमान्त नक्षत्र के नाम से गुरु वर्षारम्भ होता है। बृहस्पति के ये कार्तिकादि मास 60 संवत्सरों से सम्बन्धित गौरव वर्षों से भिन्न होते हैं।

जिस प्रकार चन्द्रमा के पूर्णिमान्त काल के नक्षत्रों के नाम से चान्द्रमासों के नाम पड़े हैं इसी प्रकार वैशाखादि मासों के कृष्णपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि के योग में बृहस्पति के अस्त और उदय होने से इसके कार्तिकादि वर्षों के नाम रखे गये हैं।

वस्तुतः जिस समय बृहस्पति सूर्य के बहुत पास आ जाता है उस समय सूर्य के प्रकाश के कारण यह देखा नहीं जा सकता, इसलिये अस्त समझा जाता है। फिर जब सूर्य से इतना दूर हो जाता है कि दिखाई पड़ने लगता है तब उदय समझा जाता है। यह घटना उस समय के लगभग होती है जब सूर्य और बृहस्पति की युति होती है जो लगभग 399 दिन या 13 मास के अंतर पर हुआ करती है। इस काल को 'बार्हस्पत्य वर्ष' कहते हैं। ऐसे वर्षों का नाम उन नक्षत्रों के अनुसार रखा जाता है जिन पर बृहस्पति के उदय या अस्त होने के समय सूर्य और चन्द्रमा दोनों रहते हैं। 16वें श्लोक में बतलाया गया है कि चान्द्र मासों के नाम उन नक्षत्रों के नाम पर पड़े हैं जिन पर चन्द्रमा पूर्णिमान्त काल में रहता है, इसलिये यह सिद्ध है कि सूर्य इन मासों के पूर्णिमान्त नक्षत्रों से 14वें नक्षत्र पर होता है। जैसे वैशाख मास में पूर्णिमा विशाखा या अनुराधा नक्षत्रों पर होती है तो इस मास में सूर्य विशाखा या अनुराधा के 14वें नक्षत्र कृत्तिका या रोहिणी में रहेगा। यदि इसी समय बृहस्पति का उदय या अस्त हो तो निश्चय है कि यह भी इन्हीं नक्षत्रों पर या इसके एकाध नक्षत्र आगे पीछे रहेगा और अमावस्या भी इन्हीं नक्षत्रों पर होगी, इसलिये बृहस्पति का 'कार्तिक वर्ष' इसी समय से आरम्भ होगा। अर्थात् वैशाख मास में यदि बृहस्पति का उदय या अस्त हो तो बृहस्पति का 'कार्तिक वर्ष' लगेगा, ज्येष्ठ मास में उदय हो तो 'बार्हस्पत्य मार्गशीर्ष' वर्ष लगेगा इत्यादि। चान्द्र मासों और वार्हस्पत्य वर्षों की दुविधा मिटाने के लिये दोनों में यह अंतर भी कर दिया जाता है कि वार्हस्पत्य वर्षों के नाम के पहले 'महा' लगा देते हैं। परन्तु आजकल इन कार्तिक आदि वर्षों का प्रचार नहीं है।

ध्यान से देखने पर मालूम होगा कि सूर्य-सिद्धान्त का यह नियम बहुत लचीला होता है। बृहस्पति के अस्तकाल से उदय काल का अंतर एक मास के लगभग होता है जिसमें सूर्य दो नक्षत्र से अधिक हट जाता है। यह संभव है कि अस्तकाल के समय सूर्य स्वाती नक्षत्र में हो और उदय काल के समय अनुराधा में। ऐसी दशा में कौन सा बार्हस्पत्य वर्ष मानना चाहिये 'महा चैत्र' या 'महा वैशाख'? शायद इसी दुविधा को दूर करने के लिये आचार्य वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में यह नियम दिया है कि उदय काल में बृहस्पति जिस नक्षत्र पर हो उसी के नाम से बृहस्पति के वर्ष का नाम रखना चाहिये।

नक्षत्रेण सहोदयमुपगच्छति येन देवपति मन्त्री।

तत्संज्ञं वक्तव्यं वर्षमासक्रमेणैव।।1।।

वर्षाणि कार्तिकादीन्याग्नेयाद्भद्वयानुयोगीनि।

क्रमशस्त्रिभं तु पंचममुपांत्यमंत्य च यद्वर्षम।।2।।

बृहत्संहिता - गुरुचाराध्याय,

वराहमिहिर ने इन वर्षों के भिन्न-भिन्न फलों की चर्चा भी की है।

बृहस्पति का वर्ष दूसरे प्रकार का भी होता है जिसे सम्वत्सर कहते हैं पंचांगों में इन्हीं संवत्सरों की चर्चा रहती है। संकल्प के मंत्रों में तो यह प्रतिदिन काम में आते हैं। ऐसे 60 संवत्सरों का एक चक्र होता है। इनके सिवा 5 संवत्सरों का एक चक्र और होता है जिनके नाम क्रमानुसार यह है- (1) संवत्सर, (2) परिवत्सर, (3) इदावत्सर, (4) अनुवत्सर, (5) इद्वत्सर। इनकी चर्चा वेदांग ज्योतिष तथा बृहत्संहिता में है जहाँ इनके फल भी बतलाये गये हैं।

2.5 सौरमान

सूर्य का भगणभोगकाल ही सौरवर्ष कहलाता है। अर्थात् सूर्य द्वारा द्वादश राशियों के भोग को एक सौरवर्ष कहते हैं। एक राशि का भोगकाल एक सौरमास होता है तथा एक अंश का भोगकाल एक-एक सौरदिन होता है। 360 सौर दिन = 1 सौरवर्ष। रवि के एकराशि संक्रमण काल से अपरराशि संक्रमण काल तक सौरमास होता है। सूर्य के संक्रान्ति वशात् ही अयन का निर्माण भी होता है। जैसे-

भानोर्मकरसंक्रान्तेः षण्मासा उत्तरायणम्।

कर्कादेस्तु तथैव स्यात् षण्मासा दक्षिणायनम्।।

द्विराशिनाथा ऋतवस्ततोऽपि शिशिरादयः।

मेषोदयो द्वादशैते मासास्तैरेव वत्सरः।।

सूर्यसिद्धान्त, मानाध्याय, श्लोक सं.-9-10

इस श्लोक में सौर, चान्द्र, नाक्षत्र और सावन मानों का व्यवहार होता है। आठ संवत्सरों की गणना बृहस्पति मान से होती है, शेष चार मानों का काम नित्य नहीं पड़ता।

2.5.1 सौरमान का प्रयोजन -

सौरेण द्युनिशोर्मानं षडशीतिमुखानि च।

अयनं विषुवच्चैव सङ्क्रान्तेः पुण्यकालता।।3।।

- सू.सि., मान.

अर्थात् दिन रात्रि का परिमाण, षडशीतिमुख, उत्तरायण और दक्षिणायन, विषुव संक्रान्ति तथा अन्य संक्रान्तियों का पुण्यकाल सौरमान से ही निश्चय किया जाता है।

2.5.2 सौरसंक्रान्तियों के नाम -

भचक्रनाभौ विषुवत्द्वितीयं समसूत्रगम्।
अयनद्वितयं चैव चतस्रः प्रथितास्तु ताः।।7।।
तदन्तरेषु सङ्क्रान्तिद्वितयं द्वितयं पुनः।
नैरन्तर्यात्तु सङ्क्रान्त्योर्ज्ञेयं विष्णुपदीद्वयम्।।8।।

अर्थात् भगोल के मध्य में एक ही व्यास पर दो विषुवत् संक्रान्तियाँ और उसी प्रकार दो अयन संक्रान्तियाँ कुल चार संक्रान्तियाँ होती हैं। इनके बीच में दो दो संक्रान्तियाँ और होती हैं जिनमें से वह संक्रान्तियाँ जो इन चारों के बाद ही आती हैं विष्णुपदी कहलाती हैं।

यदि इसका गंभीर विचार करें तो पाते हैं कि, चौथे श्लोक से आरम्भ करके आठवें श्लोक तक 12 संक्रान्तियों के नाम बतलाये गये हैं। जिस समय सूर्य किसी राशि में प्रवेश करता है उस समय संक्रान्ति होती है। राशियाँ बारह हैं जिनमें से चार राशियों को षडशीतिमुख कहते हैं। शेष में दो को विषुवत्, दो को अयन और चार को विष्णुपदी कहते हैं।

क्रम	राशि	संक्रान्ति के नाम	ऋतुओं के नाम
1.	मेष	विषुवत्	वसंत
2.	वृष	विष्णुपदी	ग्रीष्म
3.	मिथुन	षडशीतिमुख	ग्रीष्म
4.	कर्क	अयन	वर्षा
5.	सिंह	विष्णुपदी	वर्षा
6.	कन्या	षडशीतिमुख	शरद
7.	तुला	विषुवत्	शरद
8.	वृश्चिक	विष्णुपदी	हेमन्त
9.	धनु	षडशीतिमुख	हेमन्त
10.	मकर	अयन	शिशिर
11.	कुम्भ	विष्णुपदी	शिशिर
12.	मीन	षडशीतिमुख	वसंत

2.5.3 सौरमान से उत्तरायण, दक्षिणायन और ऋतु -

भानोर्मकरसङ्क्रान्तेः षण्मासेषूत्तरायणम्।
कर्कादेस्तु तथैव स्यात् षण्मासा दक्षिणायनम्।।
द्विराशिमानादृतवः षड्डुक्ताश्शिशिरादयः।
मेषादयो द्वादशैते मासास्तैरेव वत्सरः।।

(सू.सि. माना. 9-10)

अर्थात् सूर्य जिस समय मकर राशि में प्रवेश करता है उस समय से 6 महीने तक उत्तरायण और जिस समय कर्क राशि में प्रवेश करता है उस समय से 6 महीने तक दक्षिणायन होता है। ऋतु दो दो राशियों को भोग करता है; मकर संक्रान्ति से शिशिर आदि ऋतु-चक्र का आरम्भ होता है; मेष संक्रान्ति से 12 सौर मासों का आरम्भ होता है जिनका एक वर्ष भी होता है।

प्रस्तुत प्रसङ्ग में राशियों, संक्रान्तियों और ऋतुओं का परस्पर सम्बन्ध दिखलाया गया है। राशियाँ स्थिर मानी गयी हैं और इनका आरम्भ सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार अश्विनी के आदि बिन्दु से होता है जिसके अनुसार चित्रा तारे का भोगांश 180 है परन्तु ऋतुओं का क्रम विषुवत्-सम्पात के अनुसार चलता है जो चल है इसलिये राशि, अयन और ऋतुओं का सम्बन्ध धीरे धीरे छूट रहा है। एक समय था जब उत्तरायण का आरम्भ मकर राशि में उसी समय होता था जब सूर्य की गति भी उत्तर दिशा में आरम्भ होती थी और 6 महीने तक बराबर उत्तर की ओर बढ़ती जाती थी। इसी प्रकार दक्षिणायन का आरम्भ कर्क राशि में उस समय होता था जब सूर्य की गति दक्षिण की ओर हो जाती थी। परन्तु अब यह दोनों घटनाएँ एकसाथ नहीं होतीं, सूर्य की उत्तर की गति मकर संक्रान्ति से 23 दिन पहले ही आरम्भ हो जाती है। पाँच सौ वर्ष में यह अन्तर एक महीने के लगभग हो जायेगा। इस विषय पर त्रिप्रश्नाधिकार में विशेष चर्चा की गयी है। सूर्य-सिद्धान्त का यह मत अवश्य है कि विषुव सम्पात अश्विनी के 27 अंश इधर उधर ही रहता है, इससे अधिक अन्तर नहीं होता परन्तु यह न तो आजकल के विज्ञान से सिद्ध होता है और न भास्कराचार्य आदि ने ही इसे माना था। इसके विरुद्ध ब्राह्मण ग्रन्थों में बतलाये गये कृत्तिका आदि नक्षत्रों की स्थितियों से सिद्ध होता है कि सूर्य सिद्धान्त का मत ठीक नहीं है।

कुछ विद्वानों का यह भी मत है जिसका समर्थन ब्राह्मण ग्रन्थों के ही आधार पर अच्छी तरह होता है कि उत्तरायण का आरम्भ पहले उस समय से नहीं माना जाता था जब सूर्य की प्रवृत्ति उत्तर की ओर होती है वरन् उस समय से माना जाता था जब सूर्य विषुवत रेखा से उत्तर होकर उत्तर गोल में आ जाता है। इससे देवताओं के दिन और रात का भी समाधान अच्छी तरह हो जाता है क्योंकि

देवता उत्तर ध्रुव के निवासी समझे जाते हैं और उत्तर ध्रुव पर दिन का आरम्भ अथवा सूर्योदय उसी समय होता है जब सूर्य विषुवत रेखा से उत्तर होने लगता है, इसीलिये उत्तरायण देवताओं का दिन और दक्षिणायन उनकी रात समझी जाती है। यह युक्तियुक्त भी है। यदि भास्कराचार्य जी इस बात पर विचार करते तो उनको उत्तरायण के सम्बन्ध में यह कल्पना न करनी पड़ती।

दिनं सुराणामयनं यदुत्तरं निशेतरत् सांहितिकैः प्रकीर्तितम्।
दिनोन्मुखेऽर्के दिनमेव तन्मतं निशा तथा तत् फल कीर्तनाय तत्।।

(सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्याय त्रिप्रश्नवासना)

संक्रान्ति का पुण्यकाल -

अर्कमानकला षष्ट्या गुणिता भुक्तिभाजिताः।
तदर्धनाड्यस्सङ्क्रान्तेरर्वाक पुण्यास्तथापरः।।11।।

अर्थात् सूर्य के बिम्ब मान की कलाओं को साठ से गुणा करके उसकी दैनिक गति से भाग देने पर जो आवे उसकी आधी घड़ियाँ पहले और पीछे संक्रान्ति का पुण्यकाल होता है।

विशेष विचार करते हैं तो पाते हैं कि, संक्रान्ति उस समय होता है जिस समय सूर्य बिम्ब का केन्द्र राशि में प्रवेश करता है परन्तु सूर्य बिम्ब का मान 32 कला के लगभग है इसलिये संक्रान्ति का पुण्यकाल उस समय आरंभ होता है जब सूर्य के बिम्ब का पूर्वी किनारा राशि को प्रवेश करते समय स्पर्श करता है और उस समय तक रहता है जब तक बिम्ब का पश्चिमी किनारा राशि के आदि बिन्दु को पार नहीं कर जाता। यह समय मोटे हिसाब से 32 घड़ी के लगभग होता है जिसका आधा 16 घड़ी है। इस लिये संक्राति से लगभग 16 घड़ी पहले पुण्यकाल का आरंभ होता है और 16 घड़ी बाद तक रहता है। सूक्ष्म गणना के लिये श्लोकों में बतलाये हुये अनुपात से काम लेना चाहिये। संक्रान्ति काल में सूर्य की जो दैनिक गति हो उतनी गति 60 घड़ी में होती है तो सूर्य बिम्ब के समान गति कितनी घड़ियों में होगी। अर्थात्

पुण्यकाल = सूर्य बिम्ब का मान × 60 घड़ी सूर्य की दैनिक गति

इससे जो फल आवे उसका आधा संक्रान्तिकाल से घटाने पर पुण्यकाल का आरम्भ जाना जाता है और जोड़ने पर उसकी पुण्यकाल की समाप्ति का समय निकल आता है।

2.6 वृत्त चित्र

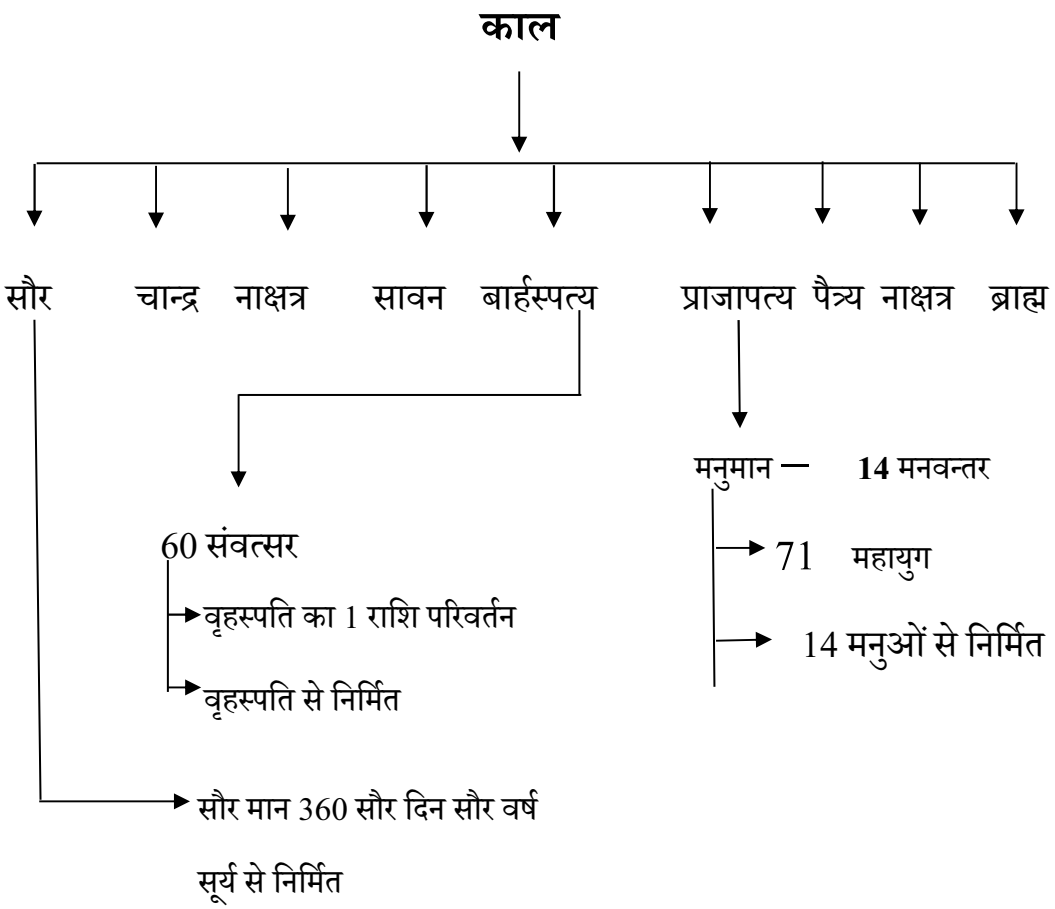

2.7 सारांशिका -

1. प्रस्तुत पाठ में प्राजापत्यमान अर्थात् मनु सम्बन्धि मान की विस्तृत चर्चा सौरवर्ष प्रमाण में की गई है, जिससे छात्रों को 'मनुजैः स्वमानात्' के अनुसार पाठ को समझने एवं गणित करने में सुलभता होगी।

2. बार्हस्पत्यमान वस्तुतः बृहस्पति से सम्बन्धित है जो समवत्सरों के द्वारा परिगणित होता है। इसकी भी सोपपत्तिक चर्चा की गई है।

3. सौरमान मुख्यरुप से सूर्य के द्वारा निर्मित है जिसमें सूर्य के प्रतिदिन की गति के आधार पर गणना बताई गई है तथा सौर प्रमाण से निर्मित होने वाले विविध स्थितियों एवं संक्रान्ति आदि की गणना भी की गई है।

4. सौरमास तथा संक्रान्ति के पुण्यकाल की भी विस्तृत परिचर्चा की गई है।

2.8 लघुत्तरीय प्रश्नोत्तर -

(क) प्राजापत्य मान क्या है ? - मनु मान ही प्राजापत्य मान है।
(ख) 1 मनु में कितने महायुग होते हैं - 71 महायुग
(ग) मनु कितने होते हैं? - 14 मनु
(घ) 14 मनु में कितनी सन्धियाँ होती हैं? - 15 सन्ध्याँ
(ङ) सम्वत्सर कितने होते हैं ? - 60 सम्वत्सर
(च) 1 सम्वत्सर का काल कितना है - गुरु की 1 राशि मध्यम चलन द्वारा,
(छ) सौर दिन संख्या 1 सौरवर्ष में कितनी है? - 360
(ज) वर्तमान मन्वन्तर कौन सा है? - वैवस्वत
(झ) 1 सौरवर्ष में सावन दिन संख्या ? 365 दिन
(ञ) कालमान कितने हैं ? - 9 (नवविधकालमान)

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थसूची -

ग्रन्थ नाम	मूल लेखक/ टीका	प्रकाशक
सूर्यसिद्धान्त	आर्ष ग्रन्थ/ प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
सिद्धान्तशिरोमणि	भास्कराचार्य/ आचार्य सत्यदेव शर्मा	,,
ग्रहलाघवम्	गणेश दैवज्ञ/ आचार्य रामचन्द्र पाण्डेय	,,
सिद्धान्ततत्त्वविवेक	कमलाकर भट्ट/ गंगाधर मिश्र	,,
बृहद्दैवज्ञरंजनम्	डॉ. मुरलीधर चतुर्वेदी	मोतीलाल बनारसीदास

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्राजापत्य मान का विस्तृत वर्णन कीजिये।
2. गौरव मान से आप क्या समझते है? स्पष्ट कीजिये।
3. सौर मान पर टिप्पणी लिखिये।
4. नवविधकाल मान में प्राजापत्य, बार्हस्पत्य एवं सौर मान की उपयोगिता पर प्रकाश डालिये।
5. क्या गौरव मान व्यावहारिक काल के अन्तर्गत आता है? समझाइये।

इकाई - 3 सावन, चान्द्र एवं नाक्षत्र मान

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 सावन मान

3.4 चान्द्र मान

3.5 नाक्षत्र मान

3.5.1 विशेष

3.5.2 नक्षत्रों के आकृति तथा तारें

3.6 सारांश

3.7 पारिभाषिक शब्दावली

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना –

आप सभी छात्रों ने पूर्व पाठ में यह पढ़ा कि, भारतीय ज्योतिष में काल गणना की चर्चा विस्तृत रुप से की गई है। काल के प्रतिपादक ग्रह सूर्य एवं अन्य ग्रहों के मानानयन की प्रक्रिया तथा काल के मापक विविध प्रमापकों का वर्णन भी इस शास्त्र का प्रतिपाद्य विषय है। वस्तुस्थिति विचार करने पर प्राप्त होता है कि, सूर्य एवं चन्द्र के द्वारा अधिकाधिक गणना में सहायता ली जाती है। चाहें तो पचांग साधन हो या नवविध कालमान दोनों की दृष्टि में इन दोनों ग्रहों की भूमिका नितान्त महत्त्वपूर्ण है। लोक में जिन प्रत्यक्ष ग्रहों की परिचर्चा है उसमें रविचन्द्र ही महत्त्वपूर्ण है। 9 प्रकार के कालमान में 4 मान (सौर, चान्द्र, नाक्षत्र, सावन) मानव के व्यवहार योग्य स्वीकार किये गये हैं। इसका मूल कारण यह है कि, हमारी धार्मिक, सांस्कृतिक तथा व्यवहारिक प्रक्रिया इन चार मानों के द्वारा ही पूर्ण हो जाती हैं। इसके कारण हम इन 4 मानों का प्रमुखता से विचार करते हैं ।

प्रस्तुत पाठ में सावन, चान्द्र एवं नाक्षत्र मान की परिचर्चा की जाएगी, जिसमें आप सभी लोग इसकी महत्ता, आनयन प्रक्रिया, भेद तथा उपपत्ति का विधिवत ज्ञान करेंगे। सूर्यग्रह क्रान्तिवृत्त में प्रतिदिन आसन्न मान से 10 चलता है। इससे वह पूर्वाभिमुख गति के कारण 3600 चलकर अपने प्रारम्भ बिन्दु पर पुनः आ जाता है। सूर्य के चलने से सौरदिन-मास-अयन-ऋतु आदि का निर्माण होता है। इससे विविध प्रकार के युग मान परिवर्तन में सहायता भी मिलती है। चन्द्रमा के स्वविमण्डल में गमन द्वारा चान्द्र दिन-मास-वर्षादि की प्रवृत्ति होती है। नक्षत्र चक्र द्वारा नाक्षत्र मान का परिज्ञान तथा आकाशीय स्थितियों का परिवर्तन प्रत्यक्ष रुप से परिलक्षित होता है।

3.2 उद्देश्य

(क) मानवव्यवहारोपयोगि कालमान परिज्ञान में दक्षता मिलेगी।

(ख) सौरमान का विधिवत परिज्ञान होगा ।

(ग) चान्द्रमान प्रमाण के प्रयोग में कुशलता मिलेगी।

(घ) सोपपत्तिक मानों का रहस्य ज्ञात होगा।

(ङ) आकाशीय मानचित्र के बोधक नक्षत्रों का ज्ञान होगा।

(च) मानों के व्यवहार का स्थल भी ज्ञात होगा।

3.3 सावनमान -

एक सूर्योदय से अपर सूर्योदय के मध्य के अन्तर्वर्ती काल को सावन दिन कहते हैं। स्पष्टतया यह सूर्य

सावन दिन है। भगवान् सूर्य स्वयं मानाध्याय में कहते हैं कि-

उदयादुदयं भानोः सावनं तत् प्रकीर्तितम्।
सावनानि स्युरेतेन यज्ञकालविधिस्तु तैः।।
सूतकादिपरिच्छेदो दिनमासाब्दपास्तथा।
मध्यमा ग्रहभुक्तिस्तु सावनेनैव गृह्यते।।

(सूर्यसिद्धान्त, मानाध्याय, श्लोक सं.-18-19)

उपर्युक्त श्लोक में सावनदिन प्रमाण का उल्लेख करते हुए ग्रन्थकार ने सावन दिन के प्रयोजन का विधिवत वर्णन किया है कि किस-किस कार्य में इस सावन मान का प्रयोग करना चाहिए। प्रस्तुत प्रसंग में मतान्तर द्वारा भी सावन की प्ररिभाषा यही बताई गई है कि, सूर्य के उदय काल से दूसरे उदय काल तक के बीच की अवधि को सावन दिन कहा जाता है। यथा चित्र में –

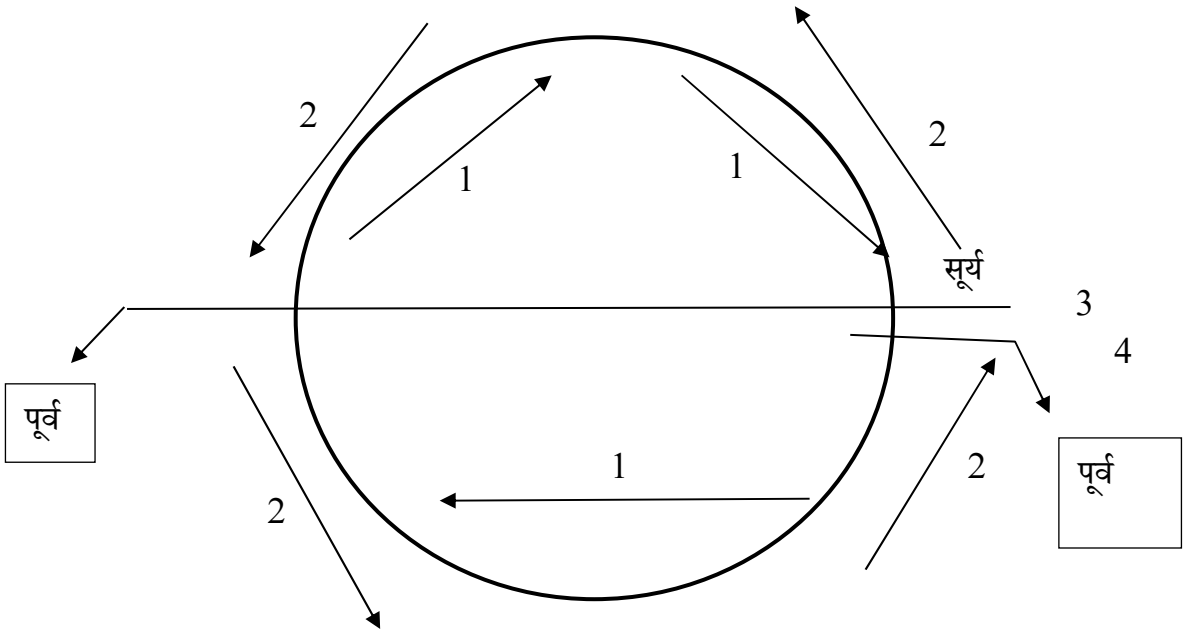

क्षेत्र परिचय -

1. सूर्य की पूर्वाभिमुख गति (स्वगति) पूर्व
2. सूर्य की गति (प्रवहवायुप्रेरित) पश्चिम
3. क्षितिजवृत्त

4. क्रान्तिवृत्त (रवि का गमन वृत्त)

प्रायः हम यही प्रतिदिन देखते हैं कि सूर्य पश्चिम के तरफ गमन करता है परन्तु वह प्रवह वायु की गति है न कि सूर्य की स्वगति।

प्रयोजन - सूतक, दिनेश, मासेश, वर्षेश एवं ग्रहों के मध्यमा गति का आनयन इसी मान के द्वारा किया जाता है।

3.4 चान्द्रमान -

सूर्य एवं चन्द्रमा की युति अमावस्या संज्ञिका होती है। एक अमावस्या से दूसरे अमावस्या के मध्यवर्तिकाल को चान्द्रमास कहते हैं। यथा-

रवीन्द्वोर्युतिः संयुतिर्यावदन्या
विधोर्मास एतच्च पैत्र्यं द्युरात्रम्।

सि.शि., म.अ., श्लोक सं.-19

तिथियों की संख्या तीस है तथा एक वृत में 3600 अंश है। अतः (3600 × 1) / 30 = 120 = 1 तिथिमान। अर्थात् जब सूर्य एवं चन्द्र का अन्तर 120 के बराबर होता है तो 1 तिथि निष्पन्न होती है। इस प्रकार तिथियों का उद्भव होता है। सूर्यसिद्धान्त में कहा गया है कि -

अर्काद् विनिस्सृतः प्राची यद्यात्यहरहः शशी।
तच्चान्द्रमानमंशैस्तु ज्ञेया द्वादशभिस्तिथिः।।

(सू.सि. - माना.)

प्रयोजन प्रसंग में आचार्य कहते हैं कि, तिथि, करण, विवाह, क्षौर, कर्म तथा जातकर्म, व्रत, उपवास व यात्रा आदि कार्य चान्द्र मान से ही ग्रहण होते हैं। अर्थात् इन कार्यों का निष्पादन चान्द्रप्रमाण के आधार पर ही करना चाहिए। यथा-

तिथिः करणमुद्वाहः क्षौरं सर्वक्रियास्तथा।
व्रतोपवासयात्राणां क्रिया चान्द्रेण सिद्धयति।।

(सूर्यसिद्धान्त, मानाध्याय, श्लोक सं.-13)

यथा आलेख द्वारा चान्द्रमान के अंशादि एवं तिथि प्रदर्शित किये गये हैं -

तिथि	चन्द्रसूर्यान्तर	तिथि स्वामी	विशेष संज्ञा
१	१२°	अग्नि	नन्दा (शुक्लपक्षारम्भ)

२	२४°	ब्रह्मा	भद्रा
३	३६°	गौरी	जया
४	४८°	गणेश	रिक्ता
५	६०°	सर्प	पूर्णा
६	७२°	गुह्य	नन्दा
७	८४°	रवि	भद्रा
८	९६°	शिव	जया
९	१०८°	दुर्गा	रिक्ता
१०	१२०°	यम	पूर्णा
११	१३२°	विश्वदेव	नन्दा
१२	१४४°	हरि	भद्रा
१३	१५६°	कामदेव	जया
१४	१६८°	शिव	रिक्ता
१५	१८०°	शशि	पूर्णा (पूर्णिमा)
१६	१९२°	अग्नि	नन्दा (कृष्णपक्षारम्भ)
१७	२०४°	ब्रह्मा	भद्रा
१८	२१६°	गौरी	जया
१९	२२८°	गणेश	रिक्ता
२०	२४०°	सर्प	पूर्णा
२१	२५२°	कार्तिकेय	नन्दा
२२	२६४°	सूर्य	भद्रा

२३	२७६°	शिव	जया
२४	२८८°	दुर्गा	रिक्ता
२५	३००°	यमराज	पूर्णा
२६	३१२°	विश्वदेव	नन्दा
२७	३२४°	विष्णु	भद्रा
२८	३३६°	कामदेव	जया
२९	३४८°	शिव	रिक्ता
३०	३६०°	पितर/चन्द्रमा	पूर्णा (अमावस्या)

3.5 नाक्षत्रमान -

नाक्षत्र मान प्रसङ्ग में आचार्य कहते हैं कि,

भचक्रभ्रमणं नित्यं नाक्षत्रं दिनमुच्यते।

नक्षत्रनाम्ना मासास्तु ज्ञेयाः पर्वान्तयोगतः।।

कार्तिकादिषु संयोगे कृत्तिकादि द्वयं द्वयम्।

अन्त्योपान्त्यो पंचमश्च त्रिधा मासत्रयं स्मृतम्।।

(सूर्यसिद्धान्त, मानाध्याय, श्लोक सं.-15-16)

अर्थात् प्रवहवायु के द्वारा प्रेरित होकर यह भचक्र सतत् भ्रमण होता है। भचक्र के एक भ्रमण काल को नाक्षत्रदिन कहते हैं।

पूर्णिमा तिथि से जिस नक्षत्र का योग होता है उसी नक्षत्र से उस मास का नाम होता है। कृतिका से दो-दो नक्षत्रों के योग से कार्तिकादि मास, अन्तिम-उपान्तिम और पंचम मास तीन-तीन नक्षत्रों के योग से निष्पन्न होते हैं। जैसे - चक्र में

पूर्णिमा तिथि के नक्षत्र	**मास**
कृत्तिका-रोहिणी	कार्तिक
मृगशीर्ष-आर्द्रा	मार्गशीर्ष
पुनर्वसु-पुष्य	पौष
आश्लेषा-मघा	माघ
पू. फा, उ. फा., हस्त	चैत्र
विशाखा-अनुराधा	वैशाख
ज्येष्ठा-मूल	ज्येष्ठ
पू.षा.-उ.षा.	आषाढ़
श्रवण-घनिष्ठा	श्रावण
शतभिष्, पू.भा., उ.भा.,	भाद्रपद
रेवती, अश्विनी, भरणी	आश्विन

अर्थात् जितने समय में नक्षत्र चक्र का एक भ्रमण पूरा होता है उसे नाक्षत्र दिन कहते हैं। पूर्णिमा के अन्त में चन्द्रमा जिस नक्षत्र में होता है उसी के नाम पर मासों के नाम पड़े है। उदाहरणार्थ कुछ वर्षो की वर्तमान स्थिति -

मास	पूर्णिमा के नक्षत्र क्रम संख्या सहित	पूर्णिमान्त काल में नक्षत्रों की वास्तविक स्थिति				
		१९९१	१९९२	१९९३	१९९४	१९९५ विक्रमी
चैत्र	१४- चित्रा १५-स्वाती	हस्त +	चित्रा	चित्रा	स्वाती	चित्रा
वैशाख	१६-विशाखा १७-अनु0	विशाखा अनुराधा	विशाखा	विशाखा	अनुराधा	विशाखा
ज्येष्ठ	१८-ज्येष्ठा १९-मूल	मूल	मूल	ज्येष्ठा	मूल	ज्येष्ठा

आषाढ़	२०-पू0षा0 २१-उ0षा0	उ0षा0	उ0षा0	पू0षा0	उ0षा0	पू0षा0
श्रावण	२२-श्रवण २३-धनिष्ठा	शतभिषा	धनिष्ठा	श्रवण	धनिष्ठा	धनिष्ठा
भाद्रपद	२४-शतभिषा	उ0भा0	पू0भा0	शत0 उ0भा0	उ0भा0	पू0भा0

मास	पूर्णिमा के नक्षत्र क्रम संख्या सहित	पूर्णिमान्त काल में नक्षत्रों की वास्तविक स्थिति				
		१९९१	१९९२	१९९३	१९९४	१९९५ विक्रमी
आश्विन	२६- उ0भा0 २७- रेवती १-अश्विनी २-भरणी	अश्विनी	रेवती	भरणी	अश्विनी	रेवती
कार्तिक	३-कृत्तिका ४-रोहिणी	कृत्तिका	भरणी+	रोहिणी	कृत्तिका	भरणी+
मार्गशीर्ष	५-मृग0 ६-आर्द्रा	मृगशिरा	मृगशिरा	आर्द्रा	मृगशिरा	रोहिणी
पौष	७-पुनर्वसु ८-पुष्य	पुष्य	पुनर्वसु	पुष्य	पुनर्वसु	पुनर्वसु
माघ	९-आश्लेषा १०-मघा	मघा	आश्लेषा	पू0फा0+	मघा	आश्लेषा
फाल्गुन	११-पू0फा0 १२-उ0फा0 १३-हस्त	उ0फा0	पू0फा0	हस्त	उ0फा0	पू0फा0

कृतिका आदि मासो का संयोग कृतिकादि नक्षत्रों से दो दो के साथ होता है, केवल अन्तिम मास और उससे ठीक पहले का मास तथा पांचवें मासों का संयोग तीन तीन नक्षत्रों से होता है।

चान्द्र मासों के नाम उन नक्षत्रों के नाम पर रखे गये हैं जिन पर चंद्रमा पूर्णिमा के दिन रहता है। इस

युक्ति से तिथि, मास और नक्षत्रों का जो गठबंधन कर दिया गया है वह संसार के ज्योतिष के इतिहास में अनुपम है। इससे यह अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है कि प्राचीन काल में हिन्दू ज्योतिषी कितने प्रतिभावान थे और उन पर दूसरे देशों के ज्योतिष शास्त्र के नकल करने का जो अभियोग लगाया जाता है वह कितना निस्सार और पक्षपात पूर्ण है। अब सूक्ष्म गणना से यह अवश्य सिद्ध होता है कि नक्षत्रों और मासों का यह परस्पर सम्बन्ध कभी-कभी छूट जाता है परन्तु यहाँ यह भी विचार करना होगा कि जो नियम तीन हजार वर्ष से अधिक समय से चला आ रहा है उसका कहीं कहीं ढीला पड़ जाना अचंभे की बात नहीं है और न नियम बनानेवालों की ही अनभिज्ञता का प्रमाण है। सारणी से यह सहज ही जाना जा सकता है कि इस समय कितना अंतर पड़ गया है।

इस सारिणी में 1994-95 वि. के नीचे के नक्षत्र बंगला के विशुद्ध सिद्धान्त-पंजिका से लिखे गये हैं जो आधुनिक ज्योतिषशास्त्र के आधार पर बनायी जाती है, जिसमें वर्षमान् 365 दिन 6 घंटा 9 मिनट 9-504 सेकंड का होता है और चित्रा तारे का भोग ठीक 180 अंश माना गया है। शेष तीन वर्षों के नक्षत्र लखनऊ और काशी के साधारण पंचांगों से लिये गये हैं। जिन नक्षत्रों पर धन के चिह्न बने हुए हैं वही उपर्युक्त नियम से कुछ भिन्न हो गये हैं। जहाँ दो नक्षत्र एक साथ दिये हैं वे अधिमासों के सूचक हैं। इससे प्रकट है कि अब भी यह नियम अच्छी तरह काम दे रहा है।

3.5.1 विशेष –

नाक्षत्र मान के अन्तर्गत परिगणना करने पर यह परिज्ञान होता है कि, सभी ग्रहों के मान की परिगणना नाक्षत्र मान के आधार पर किया जाता है। प्रति दैवसिक पंचांगस्थ चान्द्र नक्षत्रों का सर्वाधिक व्यवहार लोक में किया जाता है। जिससे विविध वर्ग में विभाजित करके देखा जा सकता है।

(क) पंचांगस्थ चान्द्रनक्षत्र - प्रतिदिन 1-1 नक्षत्रों का भोग चन्द्रमा करता है और लोक में इस नक्षत्र का सभी कार्यों में सर्वाधिक व्यवहार किया जाता है। जब भी ग्रह का भोगांश 30-20 कला होता है यानी 800 कला तो 1 नक्षत्र का खण्ड होता है। ऐसी परिस्थिति में नक्षत्र ज्ञान हेतु ग्रह के कलात्मक भोग में 800 का भाग देकर 1-1 नक्षत्र का मान जानते हैं।

यथा चन्द्रस्पष्ट - 0-20˚-20’-10’’,

कला बनाने पर 20 × 60 = 1200+20

= 1220 कला

1220/800 = भागफल 1 शेष 420

अर्थात् चन्द्रमा का अश्विनी नक्षत्र गत हो गया है तथा भरणी वर्तमान नक्षत्र है जिसका भोग 420 है। इस प्रकार इस भोगांश भुक्तांश से भोग्य एवं भुक्त घटी का आनयन भी किया जा सकता है।

(ख) नाक्षत्रदिन - प्रवहवायु के द्वारा 60 घटी में भचक्रभ्रमण द्वारा नाक्षत्रोदय द्वारा नाक्षत्रदिन की उत्पत्ति होती है। 23 घंटे 56 मिनट 4 सेकेण्ड के आसन्न यह काल होता है।

वस्तुतः क्रान्तिवृत्तीय खण्ड में 27 नक्षत्रों एवं 12 राशियों के विभागात्मक विभाजन के आधार पर नामांकित किया गया है। जिसमें छोटे खण्ड का नाम नक्षत्र एवं बड़े खण्ड का नाम राशि होता है जैसे-

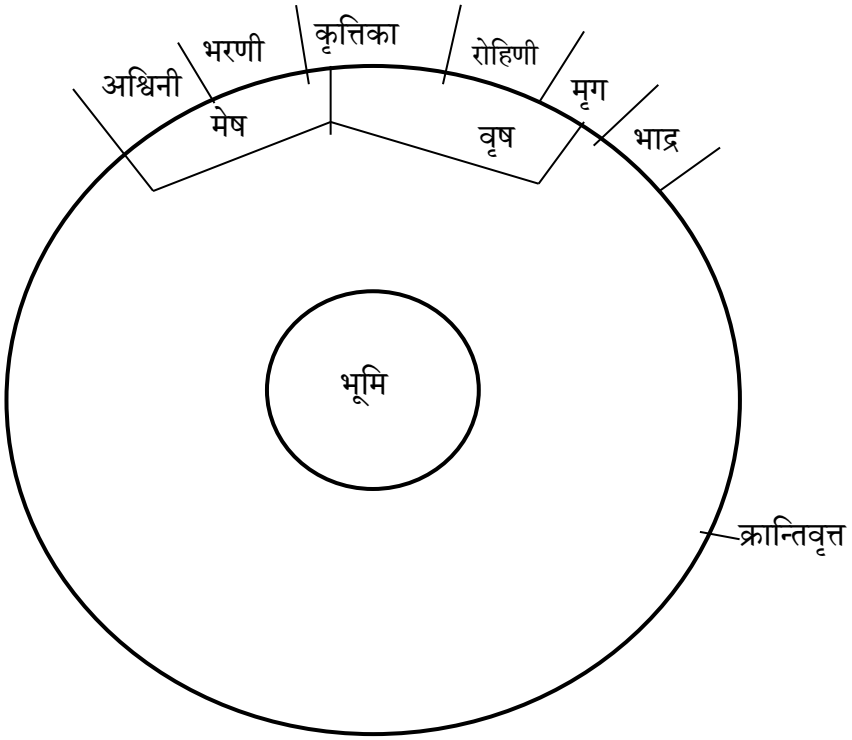

3.5.2 यहाँ नक्षत्रों की आकृति तथा तारें -

क्र.सं.	नक्षत्रम्	स्वस्पम्	तारासंख्या
1.	अश्विनी	अश्वमुखम्	3
2.	भरणी	योनिदृशम्	3
3.	कृत्ति	क्षुरः	6

4.	रोहिणी	शकटाकारम्	5
5.	मृगशीर्षः	मृगास्यम्	3
6.	आर्द्रा	मणिसृदशम्	1
7.	पुनर्वसुः	गृहाकारम्	4
8.	पुष्यः	शरः	3
9.	श्लेषा	चक्राकरम्	5
10.	मघा	भवनसदृशम्	5
11.	पु.फा.	मंचकाकारम्	2
12.	उ.फा.	शय्यासदृशम्	2
13.	हस्त	हस्ताकारम्	5
14.	चित्रा	मौक्तिकरूपम्	1
15.	स्वाती	प्रवालसदृशम्	1
16.	विशाखा	तोरणाकारम्	4
17.	अनुराधा	बलिसदृशम्	4
18.	ज्येष्ठा	कुंडलाकारम्	3
19.	मूलम्	सिंहपुच्छसदृशम्	11
20.	पू.षा.	गजदंतसदृशम्	2
21.	उ.षा.	मंचकाकारम्	2
22.	अभिजित्	×	×
23.	श्रवणम्	वामनरूपम्	3
24.	घनिष्ठा	मृदंगाकारम्	4
25.	शतभिषक्	वृत्ताकारम्	100
26.	पू.भा.	मंचाकारम्	2
27.	उ.भा.	यमलम्	2
28.	रेवती	मृदंगानुरूपम्	32

3.6 सारांशिका -

(क) प्रस्तुत पाठ में सावन मान की परिभाषा पूर्वक गोलीय तथा गणितीय स्थिति को विस्तृत रुप में बताया गया है।

(ख) चान्द्रमान वस्तुतः तिथिमान का ही एक पर्यायवाची नाम है जिसके अन्तर्गत 30 तिथियों की गणना तथा उनसे निर्मित मास-वर्षादि की परिचर्चा की गई है।

(ग) नाक्षत्रमान में नक्षत्रोदय तथा नक्षत्राश्रित मास की संज्ञा को अमान्त-पूर्णिमान्त के क्रम में पूर्णरुप से वर्णन किया गया है।

(घ) यद्यपि यह पाठ कालमान के अन्तर्गत निर्धारित है तथापि पूर्वोक्त तीनों प्रकार के मानों के वैशिष्ट्य तथा उनसे प्रभावित होने वाले विशेष स्थितियों को भी निर्देशित किया गया है।

3.7 प्रश्नोत्तर -

एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय के अन्तर्वर्ती काल को क्या कहते हैं?

- सावनदिन

सावनमास में दिनों की संख्या है? - 30 दिन

तिथियों की संख्या है? - 30

एक सौरवर्ष में सावनदिनों की संख्या है? - 365

पूर्णिमा का स्वामी कौन है? - चन्द्रमा

द्वितीया तिथि का स्वामी है? - ब्रह्मा

1 तिथि में रवि-चन्द्रान्तर होता है? - 12 अंश,

वैशाख मास की पूर्णिमा से सम्बद्ध नक्षत्र हैं? - विशाखा

चान्द्रवर्ष में तिथिसंख्या है? - 360 दिन

एक सौरवर्ष में चान्द्रदिन होता है ? - 354 दिन लगभग

3.8 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

1. सावनमान का विस्तृत परिचय दें।
2. मासों के नाम की मीमांसा करें।
3. चान्द्रमान की विशेषता लिखें।

इकाई – 4 अहोरात्र व्यवस्था

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 देवताओं और असुरों के अहोरात्र विभाग

4.3.1 देवासुरों का मध्याह्न काल

4.3.2 दिन रात्रि (अहोरात्र के छोटे-बड़े होने के कारण)

4.4 सर्वदा एकसमान मान के अहोरात्र का स्थान

4.4.1 मेरु स्थान की दिन-रात्रि (अहोरात्र) –

4.4.2 संहिता में अहोरात्र व्यवस्था

4.4.3 पितरों का अहोरात्र

4.5 सारांश

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना -

अहोरात्र पद का अर्थ होता है दिन एवं रात। वस्तुतः हम सभी मनुष्यगण भूमि के पृष्ठ भाग पर विद्यमान हैं। जिस प्रकार कदम्ब के पुष्प के चारों तरफ उसके केशर प्रसृत हैं उसी प्रकार से इस भूमि के चारों तरफ लोग एवं जनजीवन व्याप्त है। सूर्य एक है। जिस सौरमण्डल में हम सभी रहते हैं उसमें सूर्य, चन्द्र एवं ग्रहोपग्रहों तथा तारों की स्थिति है। यही कारण है कि दिन-रात्रि की परिभाषा करते समय आचार्य भास्कर कहते हैं कि "दिनं दिनेशस्य यतोऽत्रदर्शने तमी तमोहन्तुरदर्शने" अर्थात् जहाँ सूर्य का दर्शन हो वहाँ दिन तथा जिस स्थान पर सूर्य का अदर्शन हो वहाँ रात्रि परिभाषित की गई है परन्तु दिन-रात के परिज्ञान में मुख्य भूमिका क्षितिज की होती है। प्रत्येक व्यक्ति जहाँ स्थित है वहाँ उसका पृष्ठीय क्षितिज होने से भिन्न-भिन्न क्षितिजवृत्त होता है और इसी कारण दिन रात्रि मान भिन्न-भिन्न होते हैं। यथा चित्र द्वारा सूर्य जिस स्थान में जाता है वहाँ दिन होता है तथा जहाँ सूर्य का अदर्शन

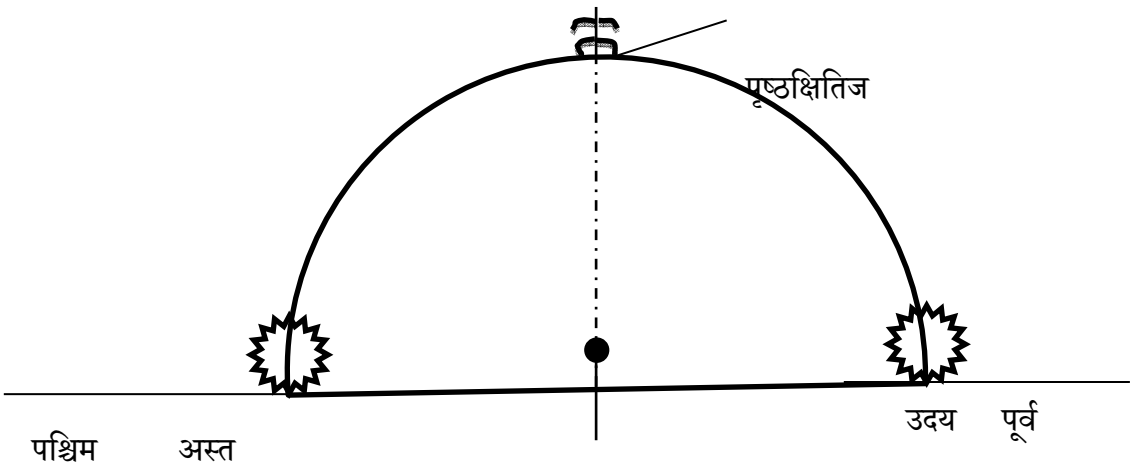

होता है वहाँ रात्रि होती है। प्रस्तुत पाठ के अन्तर्गत अहोरात्र के भेद एवं विविध स्थितियों का निरुपण किया जाएगा।

4.2 उद्देश्य –

इस पाठ के द्वारा निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति होगी।

(क) अहोरात्र की परिभाषा परिज्ञान में दक्षता प्राप्त होगी।

(ख) भिन्न-भिन्न स्थानों के अहोरात्र ज्ञान में निपुणता मिलेगी।

(ग) 2 मास तथा 4 एवं 6 मास के दिनमान वाले स्थान का ज्ञान होगा।

(घ) भौगोलिक स्थिति के ज्ञान एवं सूर्यगति का ज्ञान होगा।

(ङ) क्षैतिज अन्तर के कारण अहोरात्र के अन्तर का ज्ञान होगा।

(च) विभिन्न प्रकार के अहोरात्र के भेद का ज्ञान होगा।

4.3 देवताओं और असुरों के दिन रात (अहोरात्र) के विभाग -

देवासुरा विषुवति क्षितिजस्थं दिवाकरम् ।
पश्यन्त्यन्योन्यमेतेषां वाम-सव्ये दिनक्षपे।।47।।
मेषादावुदितस्सूर्यः त्रीन् राशिनुदगुत्तरे।
संचरन्प्रागहर्मध्यं पूरयेन्मेरुवासिनाम्।।48।।
कर्क्यादिसंचरर्धस्तद्वद् अह्नः पश्चार्थमेव सः।
तुलादीन् त्रीन्मृगादींश्च तद्वदेव सुरद्विषाम्।।49।।
अतो दिनक्षपे तेषामन्योन्यं हि विपर्ययात्।
अहोरात्रप्रमाणं च भानोर्भगण पूरणात्।।50।।

-(सू.सि. भूगोलाध्याय)

अर्थात् जिस दिन सूर्य विषुवन्मण्डल पर होता है उस दिन देवता और असुर दोनों उसको क्षितिज पर देखते हैं; इनका दिन रात एक दूसरे से विपरीत होता है। मेष राशि के आदि में उदय होकर सूर्य उत्तर की तीन राशियों मेष, वृष और मिथुन में उत्तर की ओर बढ़ता हुआ उत्तर मेरु-निवासियों अर्थात् देवताओं के दिन का पूर्वार्ध पूरा करता है। उसी प्रकार कर्क के राशि आदि से आगे बढ़ता हुआ तीन राशि कर्क, सिंह और तुला में वह उनके दिन का उत्तरार्ध पूरा करता है। इसी प्रकार तुला, वृश्चिक और धनु राशियों में जाता हुआ, वह असुरों के दिन का पूर्वार्ध तथा मकर, कुम्भ और मीन राशियों में जाता हुआ वह असुरों के दिन का उत्तरार्ध पूरा करता है। इसलिये देवताओं और असुरों के अहोरात्र एक दूसरे के विपरीत होते हैं और सूर्य का एक भगण (चक्कर) पूरा होने पर इनका एक अहोरात्र होता है।

विशेष - जिस दिन सूर्य वसन्त सम्पात बिन्दु पर आता है उस दिन को विषुव-दिन कहते हैं। इस दिन यह उत्तर और दक्षिण ध्रुव से क्षितिज पर रहता है इसलिए उत्तरध्रुव के निवासियों देवताओं को और दक्षिण ध्रुव के निवासियों असुरों को क्षितिज पर देख पड़ता है परन्तु सूर्य की गति उत्तर होने के कारण वह देवताओं को उदय होता हुआ और असुरों को अस्त होता हुआ दिखाई पड़ता है। अर्थात् इस दिन से देवताओं के दिन का और असुरों की रात का आरम्भ होता है। सूर्य के इस स्थान को अर्थात्

वसंत-सम्पात-बिन्दु को मेष का आदि स्थान कहा गया है। इसके बाद सूर्य उत्तर की ओर प्रतिदिन बढ़ता है। जब यह वसंत-सम्पात बिन्दु से 90 अंश पर पहुँचता है तब इसका उत्तर की ओर का बढ़ना रुक जाता है। इसी दिन देवताओं को यह सबसे ऊँचा उठा हुआ देख पड़ता है। यह ऊँचाई सूर्य की परम क्रान्ति के समान होती है। इसलिये इसी दिन देवताओं का मध्याह्न होता है और असुरों की मध्यरात्रि होती है। वसंत-सम्पात-बिन्दु से 90 अंश तक मेष, वृष, मिथुन तीन राशियाँ होती हैं। जब सूर्य कर्कराशि के आरम्भ से लेकर कर्क, सिंह और कन्या राशियों को पार करके तुला के आदि में पहुँचता है तब यह फिर विषुवन्मण्डल पर आता है। इस समय देवताओं को यह अस्त होता हुआ दिखाई पड़ता है। इसलिये इस समय से देवताओं की रात और असुरों के दिन का आरम्भ होता है। सूर्य का यह स्थान शरद्-सम्पात बिन्दु कहलाता है और इस दिन को भी विषुव दिन कहते हैं। इसके बाद जब तक सूर्य तुला, वृश्चिक और धनु राशियों में रहता है तब तक असुरों का पूर्वाह्न और देवताओं की पूर्वरात्रि होती है। जब सूर्य मकर राशि में पहुँचता है तब देवताओं की मध्यरात्रि और असुरों का मध्याह्न होता है। जब सूर्य मकर, कुम्भ और मीन राशियों में होता है तब असुरों का अपराह्न होता है। इस प्रकार सूर्य का एक चक्र जितने समय में पूरा होता है उतने समय में देवताओं या असुरों का एक अहोरात्र होता है परन्तु देवताओं का जो दिन है वही असुरों की रात और देवताओं की जो रात है वह असुरों का दिन होता है।

इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि मेष, वृष आदि राशियों का आरम्भ वसंतसम्पात से माना गया है न कि निरयण मेष से, जो आजकल वसंत-सम्पात से 23 अंश से भी कुछ आगे है और जो वसंत-सम्पात से सदैव आगे होता जा रहा है। इसी अन्तर को अयनांश कहते हैं। 1400 वर्ष से कुछ अधिक हुए जब वसंत-सम्पात और निरयण मेष साथ-साथ थे, इसलिए इस समय मेष का स्थान वहीं था जिसे आजकल निरयण मेष कहते हैं परन्तु यह दशा अब नहीं है। इस कारण आजकल ज्योतिषियों में दो भेद हो गये हैं, सायन-वादी और निरयण-वादी। जिन्हें सायनवादी कहा जाता है वे वसंत-सम्पात को ही मेष का आदिस्थान मानते हैं परन्तु निरयण-वादी लोग निरयण मेष को राशियों का आरम्भ स्थान मानते हैं। सूर्य-सिद्धान्त में सायन और निरयण का भेद नहीं है। इससे जान पड़ता है कि जिस समय वर्तमान सूर्य-सिद्धान्त लिपिबद्ध हुआ है उस समय वसंत-सम्पात उसी जगह था जिस जगह आजकल निरयण मेष का आदि स्थान माना जाता है। इसके बाद सिद्धान्त शिरोमणि आदि जो ग्रन्थ बने हैं उनमें इन दोनों की चर्चा है।

देवताओं या असुरों के अहोरात्र के वर्णन से, जो सूर्य-सिद्धान्त में कई जगह आया है, यह सिद्ध होता है कि इनका अहोरात्र सायन वर्ष से समान होता है और यही वर्ष का स्वाभाविक मान है

परन्तु इस अहोरात्र का प्रमाण सूर्य के भगण-काल के समान भी बतलाया गया है जो मध्यमाधिकार के श्लोक 29 और 37 के अनुसार 365.2658756 मध्यम सावन दिन बड़ा है। यह भगणकाल शुद्ध नाक्षत्र-सौर वर्ष से भी .002382 दिन बड़ा है। इसलिये जान पड़ता है कि सूर्यसिद्धान्त में सायन वर्ष का मान स्थूल रूप से सूर्य के भगण काल के समान मान लिया गया है।

4.3.1 देवासुरों का मध्याह्न काल कब होता है तथा ऊपर नीचे का क्या अर्थ है - इस प्रसंग में प्राप्त होता है कि,

अतो दिनक्षपे तेषामन्योन्यं हि विपर्ययात्।
उपर्यात्मानमन्योन्यं कल्पयन्ति सुरासुराः॥51॥
अन्येऽपि समसूत्रस्था मन्यन्तेऽधः परस्परम्।
भद्राश्वकेतुमालस्था लंका सिद्धपुराश्रिताः॥52॥
सर्वत्रैव महीगोले स्वस्थानमुपरिस्थितम्।
मन्यन्ते खे यतो गोलस्तस्य क्वोर्ध्वं क्व वाऽप्यधः॥53॥

अर्थात् देवताओं और असुरों का मध्याह्न और मध्यरात्रि अयन के अंत में एक दूसरे के विपरीत होती है। देवता और असुर दोनों अपने को दूसरे से ऊपर मानते हैं। जो लोग भूव्यास की दिशा में रहते हैं वे भी दूसरे को अपने से नीचे मानते हैं जैसे भद्राश्व वर्ष के (यमकोटि नगर के) रहने वाले केतुमाल देश के (रोमक नगर के) रहने वालों को और लंका नगर के रहने वाले सिद्धपुर वालों को अपने से नीचे समझते हैं। इस भूगोल पर सब जगह लोग अपने स्थान को ऊपर मानते हैं क्योंकि यह भूगोल आकाश में स्थित है इसलिये उसका ऊपर और नीचे कहाँ है?

विशेष- 51वें श्लोक का पूर्वार्ध 50वें श्लोक से सम्बन्ध रखता है और उत्तरार्ध में यह बतलाया है कि देवता और असुर दोनों अपने को दूसरे से ऊपर समझते हैं। इसी बात का प्रमाण आगे के दो श्लोकों में उदाहरण के साथ बतलाया गया है।

अयन के अन्त में देवताओं और असुरों का मध्याह्न और मध्यरात्रि परस्पर विपरीत होने का कारण स्पष्ट ही है। क्योंकि जिस समय सूर्य सायन कर्क राशि में प्रवेश करता है उस समय यह उत्तर ध्रुव निवासियों को सबसे ऊँचा देख पड़ता है और दक्षिण ध्रुव निवासियों के लिए सबसे नीचे होकर अदृश्य रहता है इसलिए इस समय देवताओं का मध्याह्न और असुरों की मध्यरात्रि होती है। इसी प्रकार जिस समय सूर्य सायन मकर राशि में प्रवेश करता है उस समय असुरों का मध्याह्न और देवताओं की मध्यरात्रि होती है।

ऊपर नीचे की बात भी समझना कठिन नहीं है क्योंकि सब लोग उस दिशा को ऊपर मानते हैं जो आकाश के मध्य में होता है और इसकी विपरीत दिशा को नीचे समझते हैं। पृथ्वी गोल है और इसके चारों ओर आकाश है इसलिए सब जगह के रहने वाले अपने को ऊपर और अपने भूव्यास के दूसरे सिरे पर रहने वाले को नीचे समझते हैं।

4.3.2 दिन- रात्रि (अहोरात्र) के छोटे एवं बड़े होने के कारण

अतश्च सौम्ये दिवसो महान्स्याद्रात्रिर्लघुर्व्यस्तमतश्च याम्ये।

द्युरात्रवृत्ते क्षितिजादधःस्थे रात्रिर्यतः स्याद्दिनमानमूर्ध्वे।।5।।

-सि.शि.

अर्थात् - उत्तर गोल में चर तुल्य काल के अनन्तर पूर्व में सूर्योदय और दक्षिण गोल में चर तुल्य काल के अनन्तर सूर्योदय होता है। अतः उत्तर में गमनशील ग्रह का दिनमान 30 घटी से अधिक एवं दक्षिण गोल में 30 घटी से कम का दिन मान होता है।

उपपत्ति- अहोरात्रवृत्त उन्मण्डल के पूर्व सम्पात से याम्योत्तराहोरात्रवृत्त सम्पात निरक्षखमध्य तक का समय 15 घटी = 6 घण्टा है।

अतः 15 घटी + चर घटी = दिनार्द्ध।

अतः 2 (15 घटी + चर घटी) = 30+2 चर घटी = दिन मान तथा 15 घटी-चर = रात्र्यर्ध।

अतः 2(15घटी-चर) = 30-2 च = रात्रि मान।

तथा 30+2 चर + 30-2 च = अहोरात्रमान दक्षिण गोल में होता है। उक्त क्रिया का समीकरण वैपरीत्य स्वतः सिद्ध हो जाता है।

4.4 सर्वदा एकसमान मान के रात्रि-दिन (अहोरात्र) का स्थान -

सदा समत्वं द्युनिशोर्निरक्षे नोन्मण्डलं तत्र कुजाद्यतोऽन्यत्।
षट्षष्टिभागाभ्यधिकाः पलांशा यत्राथ तत्रास्त्यपरो विशेषः।।6।।
लम्बाधिका क्रान्तिरुदक् च यावत्तावद्दिनं सन्ततमेव तत्र।
यावच्च याम्या सततं तमिस्रा ततश्च मेरौ सततं समार्धम्।।7।।

- सि.शि0, गोला.

अर्थात् - दिन-रात्रि की परमाधिकता और परम लघुता क्षितिज वृत पर निर्भर है, -क्योंकि मात्र

उन्मण्डल ही वहाँ एक क्षितिज वृत्त है।

उपपत्ति - उदाहरण द्वारा समझाया जा रहा है।

जिस देश में अक्षांश = 70 है तो उस देश में लम्बांश = 90°-70 = 20° । उस देश में निरक्ष क्षितिज वृत्त दक्षिण क्षितिज से 20° ऊपर और उत्तर क्षितिज से 20° नीचे लगा रहेगा।

जिस समय सूर्य की क्रान्ति 20° के तुल्य होगी उस समय उत्तर क्षितिज में अर्द्धोदित रवि बिम्ब होकर, मध्याह्न में दक्षिण क्षितिज से ऊपर याम्योत्तर वृत्त में रवि 40° उन्नत रहेगा। अतः उस समय 15 + 15 = 30 दिनार्ध, अतः दिनमान = 60 घटी होता है।

∴ रात्रि मान = 0

इसी के द्वितीय दिन में क्रान्ति की वर्द्धमान स्थिति में सूर्य उत्तर क्षितिज का स्पर्श नहीं करेगा। इस प्रकार परम क्रान्ति तुल्य सूर्य की स्थिति में इस प्रकार मिथुनान्त क्रान्ति 12°+8° + 4° =24° में सूर्य उत्तर क्षितिज से 4 अंश ऊपर-ऊपर ही भ्रमण करेगा, पुनः इसी क्रम से परमोत्तरा क्रान्ति की अपचीयता में सूर्य अवरोहण अस्त क्षितिज की ओर जावेगा, अतः 20 अंश तुल्य क्रान्ति तक सदा सूर्य दर्शन होगा तब तक दिन ही रहेगा। तथा दक्षिणगोल में तब तक सूर्य के क्षितिज से नीचे रहने तक सदा दक्षिण गोल में रात्रि होगी।

इस प्रकार मेरु = ध्रुव का अक्षांश = 90 लम्बांश = 90-90 = 0 शून्य, अतः मेरु में भूपरिधि = 0 बिन्दु मात्र भूपरिधि से ध्रुव स्थान में भूपरिधि का अभाव। ध्रुव केन्द्र से 90 अंश की दूरी पर ध्रुव का क्षितिज होने से मेष-वृषभ मिथुनान्त सूर्य में ध्रुव में 15 घटी = 3 महीने तथा कर्क-सिंह-कन्यान्त में ध्रुव में सूर्यास्त होने से 15 घटी = 3 महीने मध्याह्न से सूर्यास्त का समय = 30 घटी = 6 महीने का दिन उत्तर ध्रुव में होगा। तथा तुलादि से मीनान्त 6 महीने तक जब सूर्य रहेगा तो दक्षिण ध्रुव के क्षितिज के ऊपर दक्षिण ध्रुव में दिन रहेगा, तो ऊत्तर ध्रुव में रात्रि रहेगी। गोल दर्शन से स्पष्ट है।

4.4.1 मेरु स्थान की दिन-रात्रि (अहोरात्र) -

विषुवद्वृत्तं द्युसदां क्षितिजत्वमितं तथा च दैत्यानाम्।
उत्तरयाम्यौ क्रमशो मूर्धोर्ध्वगतौ ध्रुवौ यतस्तेषाम्।।8।।
उत्तरगोले क्षितिजादूर्ध्वे परितो भ्रमन्तमादित्यम्।
सव्यं त्रिदशाः सततं पश्यन्त्यसुरा असव्यगं याम्ये।।9।।

उत्तर ध्रुव में देवस्थान, दक्षिण ध्रुव में राक्षस स्थान होने से, नाड़ीवृत्त दोनों ध्रुवों का क्षितिजवृत्त होता

है। क्योंकि दोनों ध्रुव उन दोनों के आकाश खमध्य में होते हैं।

अतः उत्तर गोल में क्षितिज के ऊपर भ्रमण करते हुये देवता लोग, सव्य रूप में, असुर लोग अपसव्य रूप में उत्तरगोल में निरन्तर 6 महीने तक एवं दक्षिण गोल में निरन्तर देव दानव, भ्राम्यमाण सूर्य को देखते हैं।

उपपत्ति - गोल दर्शन से स्पष्ट है कि क्षितिज के ऊपर अहोरात्र क्षितिज सम्पात के उदय सम्पात से अहोरात्र क्षितिज के अस्त सम्पात तक दिन मान कहना परिभाषया समीचीन है। अतः नाड़ीवृत्त के समानान्तर मेषादि 6 अहोरात्र वृत्त नाड़ी वृत्त से उत्तर होने से उत्तर ध्रुव के उदय क्षितिज के ऊपर रहने से वहाँ निरन्तर 6 महीने का दिन एवं तुलादि 6 राशियाँ क्षितिज के नीचे रहने से 6 महीने की रात्रि उत्तर ध्रुव में होती है और ऐसी स्थिति में दक्षिण ध्रुवीय देशों में दिन-रात्रि का मान व्यस्त समझना चाहिए।।।।

दिनं दिनेशस्य यतोऽत्र दर्शने तमी तमोहन्तुरदर्शने सति।
कुपृष्ठगानां द्युनिशं यथा नृणां तथा पितृणां शशिपृष्ठवासिनाम्।।10।।

- सि. शि. -गोला

अर्थात् - भूपृष्ठ स्थित मानव की तरह चन्द्रपृष्ठस्थ पितरों का दिनमान-जहाँ सूर्यदर्शन है वहाँ दिन, सूर्यदर्शन रहित भूपृष्ठ में रात्रि होती है। जैसे भूपृष्ठस्थ प्राणियों की दिन रात्रि होती है उसी भाँति चन्द्रपृष्ठस्थ पितरों की भी दिन रात्रि होती है।।।।

4.4.2 संहिता में अहोरात्र व्यवस्था -

दिनं सुराणामयन यदुत्तरं निशेतरत्सांहितिकैः प्रकीर्तितम्।
दिनोन्मुखेऽर्के दिनमेव तन्मतं निशा तथा तत्फलकीर्तनाय तत्।।11।।
द्वंन्द्वान्तमारोहति यैः क्रमेण तैरेव वृत्तैरवरोहतीनः।
यत्रैव दृष्टः प्रथमं स देवैस्तत्रैव तिष्ठन्न विलोकयते किम्।।12।।

- सि. शि. -गोला

मध्य रात्रि के पश्चात् सूर्य दिनोन्मुख हो जाने से मध्य रात्रि से मध्याह्न तक के समय की दिन संज्ञा एवं मध्य दिन के बाद रात्रि की उन्मुखता से, मध्य दिन से रात्रि मध्य तक की रात्रि संज्ञा संहिता शास्त्रकारों के मत से हुई है। इस आधार से उत्तर ध्रुव में कर्कादि से लेकर धन्वन्त तक रात्रि, दक्षिण ध्रुव में दिन तथा मकरादि से मिथुनान्त तक उत्तर ध्रुव में दिन, दक्षिण ध्रुव में रात्रि होती है। यह मत सांहितिकों का है जो गोल युक्ति से बहिर्भूत है।।।।

4.4.3 पितरों का अहोरात्र -

विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्तः स्वाधः सुधादीधितिमामनन्ति।
पश्यन्ति तेऽर्कं निजमस्तकोर्ध्वे दर्शे यतोऽस्माद्द्युदलं तदैषाम्॥13॥
भार्धान्तरत्वान्न विधोरधःस्थं तस्मान्निशीथः खलु पौर्णमास्याम्।
कृष्णे रविः पक्षदलेऽभ्युदेति शुक्लेऽस्तमेत्यर्थत एव सिद्धम्॥14॥

- सि. शि. -गोला

चन्द्रमा के ऊपरी पृष्ठ पर पितर लोग (भौतिक शरीर छोड़ कर जो मृतात्मा रहते हैं।) अपने नीचे पृथ्वी को देखते हैं। जैसे भूपृष्ठ वासी चन्द्रमा को ऊपर देखते हैं वैसे ही चन्द्रपृष्ठ वासी पृथ्वी को आकाश में अपने ऊपर देखते हैं। अर्थात् चन्द्रपृष्ठ वासियों के लिए आकाशस्थ पृथ्वी चन्द्रमा की तरह देखी जाती है।

भू गर्भाभिप्रायिक अमान्त समय में चन्द्रपृष्ठस्थ मृतात्मा अपने अपने स्थान से ऊपर सूर्य को देखते हैं इसलिए अमान्त समय में चन्द्रपृष्ठ में मध्याह्न अर्थात् दिनार्ध होता है।

अमान्त समय से 6 राशि की दूरी पर पूर्णान्त होने से पूर्णान्त में पितृलोकाभिप्रायिक निशीथ अर्थात् रात्र्यर्द्ध पितृलोक में होता है।

इस प्रकार निश्चित स्थान से 3 राशि 900 आगे अर्थात् कृष्णपक्ष की साढ़े सप्तमी को पितृलोकाभिप्रायिक क्षितिज में सूर्योदय होता है और इसी सिद्धान्त से शुक्लपक्ष साढ़े सप्तमी $(7\frac{1}{2})$ को पितृलोकाभिप्रायिक चन्द्र पृष्ठ में सूर्यनारायण अस्त होते हैं।

अभ्यास प्रश्न –

1. अहोरात्र पद का क्या अर्थ है?
   क. रात्रि ख. दिन ग. दिन-रात घ. अहर्गण
2. जिस दिन सूर्य वसन्त सम्पात बिन्दु पर आता है, उस दिन को क्या कहते है?
   क. भूदिन ख. विषुव दिन ग. कुदिन घ. चान्द्रदिन
3. चरखण्ड कहाँ होता है?
   क. क्रान्तिमण्डल में ख. द्युरात्रमण्डल में ग. विषुव मण्डल में घ. दृग्वृत्त में
4. निरक्ष देश का अक्षांश कितना होता है?
   क. ३०° ख.४०° ग. ०° घ. ६०°

5. जिस देश में अक्षांश ७० है, तो लम्बांश कितना होगा?

क. २०° ख.३०° ग. ४०° घ. ५०°

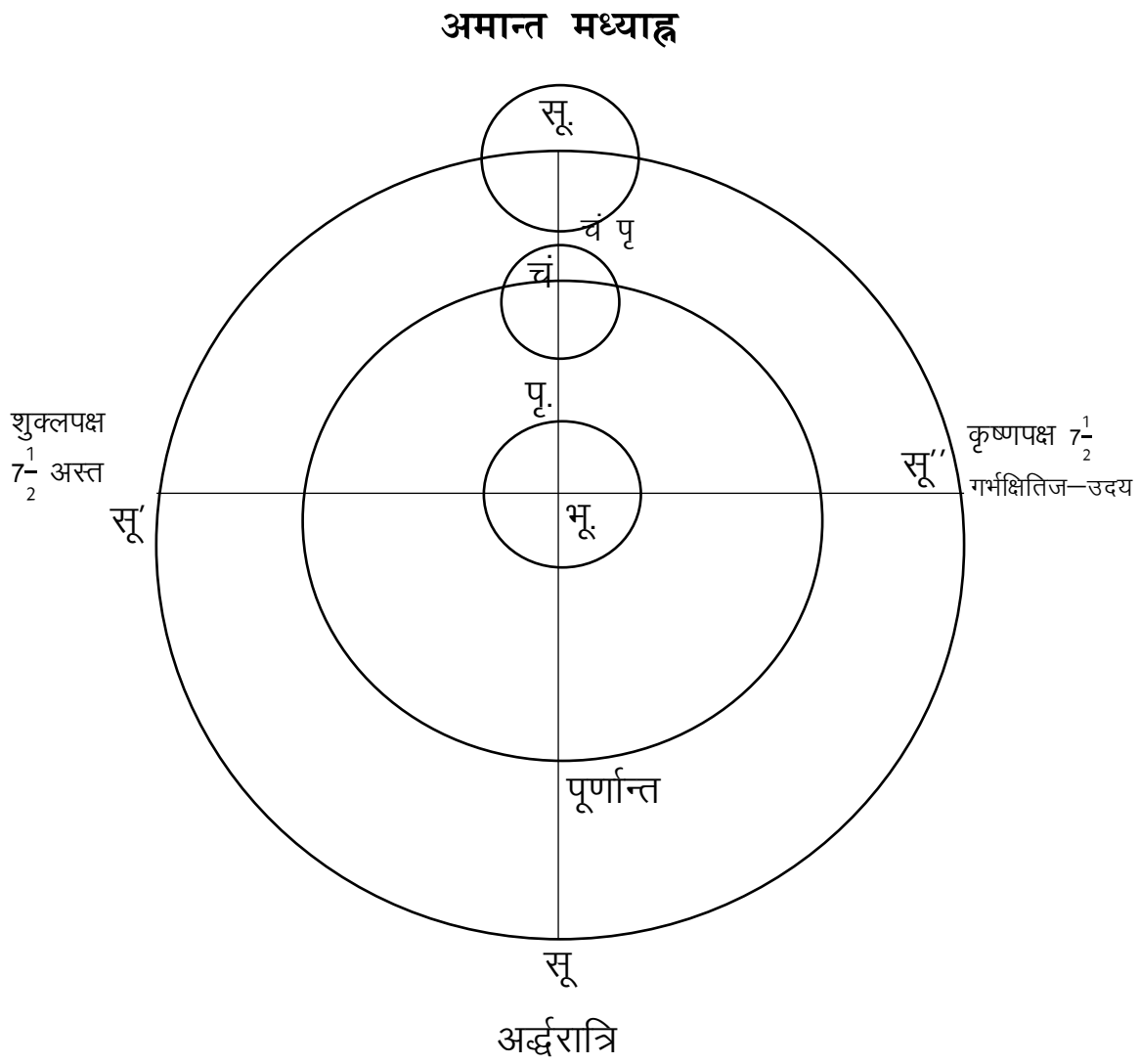

उत्पत्ति - चित्र देखें -

सूर्य कक्षा में गर्भाभिप्रायिक अमान्त काल में सू = सू = मध्याह्न या अमान्त

चन्द्र कक्षा में च = अमान्त

पृथ्वी = पृ.

भू = भूगर्भ केन्द्र

सू भू सू = पृथ्वी में गर्भ क्षितिज।

सू सू' = अमान्त के बाद की सार्द्ध सात $(7\frac{1}{2})$ तिथियाँ

पूर्णान्त = सू'' = अर्द्धरात्रि।

सू = पितृलोकाभिप्रायिक सूर्योदय = $(7\frac{1}{2})$ कृष्णपक्ष की, $(7\frac{1}{2})$ तिथियाँ=चं.सू.=90° दर्शान्त समय में चन्द्रपृष्ठाभिप्रायिक ख मध्य के शिर में सूर्य बिम्ब होने से चन्द्रपृष्ठ में मध्याह्न देखा जाना क्षेत्र दर्शन से स्पष्ट है।

विशेष- अमान्त काल अनेक प्रकार का होता है।

सूर्य भ्रमण मार्ग और और चन्द्र भ्रमण मार्ग की एकता अर्थात् चन्द्रशर के अल्पता की स्थिति के समय उक्त क्षेत्र सुतरां समीचीन है। किन्तु चन्द्रमा अपने विमण्डल में भ्रमण करता है, चन्द्र बिम्बोपरि कदम्ब सूत्र जहाँ क्रान्तिवृत्त में लगेगा, उस जगह पर सूर्य बिम्ब होने से भूपृष्ठ से चन्द्र सूर्योपरिगत रेखा में दोनों सूर्य चन्द्र बिम्बों की स्थिति स्वल्पान्तर शर के अवसर पर ठीक हो सकती है। चन्द्रमा के शराभाव विशिष्ट अमान्त में उक्त क्षेत्र सुतरां सही है।

चन्द्रमा की शर सत्ता की स्थिति में तथा भूपृष्ठ क्षैतिज एवं चन्द्रपृष्ठ एवं चन्द्रपृष्ठ क्षितिजों में वृत्त की स्थिति वश अन्य अनेक संस्कार विशेषों से उक्त क्षेत्र की रचना अन्य प्रकार की होगी। जो यहाँ पर व्याख्यान या क्षेत्र से नहीं दर्शायी जा सकती है और यह गुरुमुख से ग्रन्थाध्ययन से ही सम्यक् स्पष्ट हो सकती है।।।।

4.5 सारांशिका –

इस पाठ में निम्नलिखित विषय विस्तृत रूप से वर्णित हैं।

(क) अहोरात्र की परिभाषा तथा व्यवस्था पूर्णरुपेण प्रतिपादित किया गया है।

(ख) विभिन्न अक्षांश के स्थानों में अहोरात्र का भेद एवं उसका कारण बताया गया है।

(ग) चन्द्रपृष्ठोर्ध्व पितरों के दिन-रात्रि की व्यवस्था को भी निर्देशित किया गया है।

(घ) मेरु पर दिन-रात्रि की व्यवस्था उपपत्ति के सहित बताई गई है।

(ङ) सचित्र विविध अहोरात्र सन्दर्भित विषयों को सरल एवं सुबोध ढंग से व्याख्यायित किया गया है।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

कुदिन – कु का अर्थ होता है – भू अर्थात् पृथ्वी। इस प्रकार कुदिन का तात्पर्य है – भूदिन। 'उदयादुदयं भानो: भूमे: सावन वासर:' परिभाषा के अनुसार एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय पर्यन्त भूदिन होता है।

अहोरात्र – अहोरात्र पद का अर्थ है – दिन-रात।

चरखण्ड – चरखण्ड द्युरात्रवृत्त अर्थात् अहोरात्र वृत्त में होता है।

अमान्तकाल – अमावस्यान्तकाल।

दिनार्द्ध – दिन के आधे भाग को दिनार्द्ध कहते है।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ग
2. ख
3. ख
4. ग
5. क

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

ग्रन्थ नाम	लेखक/टिका	प्रकाशक
सूर्यसिद्धान्त	प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय/ माधव प्रसाद पुरोहित	चौखम्भा प्रकाशन
सिद्धान्तशिरोमणि	आचार्य सत्यदेव शर्मा	,,
ग्रहलाघवम्	गणेश दैवज्ञ/ आचार्य रामचन्द्र पाण्डेय	,,
सिद्धान्ततत्त्वविवेक	कमलाकर भट्ट/गंगाधर मिश्र	,,

बृहद्दैवज्ञरंजनम्	डॉ. मुरलीधर चतुर्वेदी	मोतीलाल बनारसीदास

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अहोरात्र से आप क्या समझते है? स्पष्ट कीजिये।
2. 6 मासात्मक दिन एवं रात्रि का विवेचन करें।
3. मेरु पर अहोरात्र की व्यवस्था लिखें।
4. पितृ जनों के अहोरात्र प्रमाण का उल्लेख करें।
5. गोलीय आलेख द्वारा दिन-रात्रि की व्यवस्था दिखावें।

इकाई – 5 अधिमास एवं क्षयमास

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 अधिकमास एवं क्षयमास का लक्षण

5.3.1 अधिमास एवं क्षयमास में त्याज्य कर्म

5.4 अधिकमास की उपपत्ति

5.4.1 अधिमास का गणितीय उपपत्ति -

5.5 क्षयमास की उत्पत्ति

5.6 सारांश

5.7 पारिभाषिक शब्दावली

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना -

भारतीय काल गणना में मास का अत्यधिक महत्त्व है। कालमान के अनुसार चान्द्रमान के आधार ही मास की गणना ज्योतिष में बताई गई है। ग्रहसाधन प्रसंग में अधिमास एवं क्षयमास का अत्यधिक महत्त्व बताया गया है। भारतीय कालगणना के अन्तर्गत सौर एवं चान्द्र दोनों प्रकार के मानों को स्वीकार किया गया है ताकि दोनों का व्यवहार भी किया गया है। यही कारण है कि अधिकमास एवं क्षयमास उत्पन्न होते हैं तथा उनका साधन भी शास्त्रों में किया गया है। न केवल सिद्धान्त ग्रन्थों में अपितु फलित एवं मुहूर्त ग्रन्थों में भी अधिमास एवं क्षयमास की चर्चा की गई है।

5.2 उद्देश्य –

इस पाठ के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

(क) अधिमास के लक्षणज्ञान में कुशलता प्राप्त होगी।

(ख) अधिमास की उत्पत्ति के मूल का ज्ञान होगा।

(ग) क्षयमास की उपपत्ति ज्ञात होगी।

(घ) क्षयमास की संभावना का ज्ञान भी होगा।

(ङ) अधिमास की संभावना का मध्यम मान ज्ञात होगा।

(च) क्षयमास कब-कब होगा यह स्फुटित होगा।

5.3 अधिकमास एवं क्षयमास का लक्षण

सिद्धान्तशिरोमणि के आधार पर अधिकमास क्षयमास का लक्षण -

असंक्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटं स्यात्
द्विसंक्रान्तिमासः क्षयाख्यः कदाचित्।
क्षयः कार्तिकादित्रये नान्यतः स्या -
त्तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयं स्यात्।।।।

सिद्धान्तशिरोमणि नामक ग्रन्थ में श्री भास्कराचार्यजी ने कहा है कि जिस चान्द्र मास में सूर्य की संक्रान्ति नहीं होती है तो उस मास की अधिकमास संज्ञा होती है युक्ति अनुसार बात यह है कि चान्द्र महिना वही होता है कि जिसमें सूर्य की संक्रान्ति होती है। इसलिये संक्रमण रहित मास अधिक या मल या पुरुषोत्तम होता है। एवं जिस मास में अर्थात् चान्द्रमास में दो संक्रान्ति हो उस चान्द्रमास को क्षयमास कहते हैं। यह क्षयमास प्रायः अभी कार्तिकादि तीन मास में होता है या यों समझिये कार्तिक, अगहन, पौष ही क्षय हो सकता है किन्तु किसी किसी के पक्ष में 'कार्तिक आदि येषां ते.

अर्थात् कार्तिक है आदि में जिसके या यों समझिये अगहन, पौष, माघ इन्हीं में क्षय की संभावना होती है, ऐसा कथन है। तथा जिस वर्ष में क्षय मास होता है उस वर्ष में दो अधिक मास 1 तीन मास के पूर्व तथा 1 अनन्तर से होता है। यहाँ किसी के मत में प्रथम अधिकमास तीस दिन का और अन्य पक्ष में साठ दिन का मानते हैं।

मुहूर्तमार्तण्ड में बताया गया है कि -

एकस्मिन्वर्षे अधियुगे अधिकद्वये सति पूर्वोऽधिमासो
प्रथमोऽधिमासः प्राकृतः प्राकृतवज्ज्ञेयः। अधिकवन्न त्याज्यः।
अर्थादुत्तरोऽधिकमासो मलमासस्तदुक्तम्।
मासद्वयेऽब्दमध्ये च संक्रमो न भवेद्यदा।
प्राकृतस्तत्र पूर्वः स्यादुत्तरस्य मलिम्लुचः।।

यदि एक ही वर्ष में क्षय तथा दो अधिमासों की प्राप्ति हो तो क्षय से प्रथम अर्थात् पहिला अधिकमास प्राकृत होता है अधिक की तरह त्याज्य नहीं होता है अर्थात् उत्तर वाला या यों समझिये क्षय के बाद वाला अधिक मास मलमास होता है। ऐसा कहा गया है।

जैसे-यदि एक वर्ष में दो चान्द्र मासों में सूर्य की संक्रान्ति न हो तो क्षय से पूर्ववर्ती महिना प्राकृत अर्थात् तीस दिन का होता है। क्षय से बाद वाला अधिक होता है। इस विषय में विचारणीय है कि,

पितामहः -

अष्टाधिमासाः स्युर्नित्यं प्रोच्यन्ते फाल्गुनादयः।
सौम्यपौषौ क्षयो नित्यं भवेतामिति निश्चितम्।।3।।
क्षयो वाप्यधिमासो वा स्यादूर्ज इति निश्चितम्।
न क्षयो नाधिमासः स्यान्माघे वै परिकीर्तितः।।4।।

ब्रह्माजी का आदेश है कि फागुन आदि आठ महीनों में से ही अधिक मास और अगहन व पौष मास क्षय नित्य होता है। ऐसा निश्चित प्राय है।

क्षय के विषय में यह भी संभावना है कि वह क्षय व अधिमास कार्तिक में हो सकता है तथा माघ महीना न तो अधिक व क्षय हो सकता है।

आचार्य चण्डेश्वर द्वारा लक्षण:-

दर्शद्वयमतिक्रम्य यदा सङ्क्रमते रविः।
मलमासः स विज्ञेयः सर्वकर्मसु गर्हितः।।

आचार्य चण्डेश्वर का कहना है कि यदि दो अमावास्याओं के अन्तर सूर्य की संक्रान्ति न होने से उक्त मास को मलमास कहते हैं। इस मलमास में समस्त शुभ काम नहीं करना चाहिये।

बादरायण के आधार पर -

षष्टिभिर्दिवसैर्मासः कथितो बादरायणैः।

आद्यो मलिम्लुचः पक्षो द्वितीयः प्राकृतः स्मृतः।।

आचार्य बादरायण का कथन है कि, यह मलमास साठ दिन का होता है। पहला पक्ष तो यह है कि क्षय पूर्ववर्ती अधिक मास अर्थात् मलमास 60 दिन का।

दूसरा पक्ष है कि पहिले वाला अधिमास प्राकृत अर्थात् 30 तीस दिन का होता है। अब भी इस देश में दोनों धारा बहती हैं।।

ब्रह्म सिद्धान्त के आधार पर लक्षण -

चान्द्रो मासो ह्यसङ्क्रान्तो मलमासः प्रकीर्तितः।।

ब्रह्मसिद्धान्त में प्रतिपादित है कि जिस चान्द्र महिना में सूर्य की संक्रान्ति नहीं होती है। उसे मलमास कहते हैं।।

कालनिर्णय द्वारा लक्षण किया है कि -

सङ्क्रमो यदि भवेद्रवेस्ततो मण्डलाद्बहिरनिर्गते विधौ।

उच्यतेऽथ स हि सङ्क्रमो बुधैः शुद्धमास इतरो मलिम्लुचः।।

इसमें कहा है कि यदि सूर्य मण्डल से बाहर न निकले हुए चन्द्र के मध्य काल में संक्रमण होने से शुद्ध मास एवं इसके विपरीत में मलिम्लुच मास होता है।

मुहूर्तमार्त्तण्ड द्वारा लक्षण बताया गया है कि -

ब्रह्माद्यैरिनमण्डलान्त उदितश्चान्द्रस्त्वमान्तः परै-

र्मासोऽसङ्क्रमणो द्विसङ्क्रमणको ज्ञेयोऽधिकोऽथो क्षयः।।

ब्रह्मा आदि सिद्धान्त कर्ताओं ने सूर्य मण्डल के अन्तर संयोग तक के चान्द्रयोग से मास और मण्डल के बाहर चन्द्र के जाने पर यदि संक्रान्ति हो तो अधिक मास अर्थात् ब्रह्मादि पक्ष में मण्डलान्त मास और अन्य मत में अमान्त से अमान्त तक। एक चान्द्र मास जब ही कहलाता है जब इसके मध्य सूर्य की संक्रान्ति होती है तो चान्द्रमास अन्यथा अधिकमास होता है। जिस चान्द्रमास में अर्थात् दो अमावस्याओं के भीतर यदि दो सूर्य की संक्रान्ति हों तो क्षयमास होता है।।।

गर्ग मत से लक्षण बताया गया है कि -

यदा चन्द्रोऽर्कबिम्बस्थस्ततः सङ्क्रमते रविः।

दानव्रतादि यज्ञादि वर्ज्यं तत्राधिमासके।।

जब कि सूर्य बिम्बस्थ चन्द्रमा होता है तो उसके बाद यदि सूर्य की संक्रान्ति होती है तो अधिक मास होने के कारण दान, व्रत, यज्ञादि शुभ कार्य नहीं करना चाहिये।।

लल्लमत से अधिक मास की परिभाषा होती है कि -

यदा शशी याति गभस्तमण्डलं दिवाकरः सङ्क्रमणं करोत्यनु।

विवाहयज्ञोत्सवनाशहेतुकस्तदाधिमासः कथितः स्वयम्भुवा।।

आचार्य लल्ल का कहना है कि, जब चन्द्रमा सूर्य मण्डल में प्रवेश करता है और इसके पश्चात् सूर्य की संक्रान्ति यदि होती है तो अधिक मास होता है। इसमें विवाह, यज्ञ, उत्सव आदि नहीं करना चाहिये। ऐसा ब्रह्मा जी का कथन है।

5.3.1 अधिमास एवं क्षयमास में त्याज्य कर्म -

गर्ग के मत से अधिक में त्याज्य कर्म -

अग्न्याधानं प्रतिष्ठां च यज्ञो दानव्रतानि च।

वेदव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरणमेखलाः।।20।।

गमनं देवतीर्थानां विवाहमभिषेचनम्।

यानं च गृहकर्माणि मलमासे विवर्जयेत्।।21।।

गर्गाचार्य जी का कहना है कि अग्न्याधान, प्रतिष्ठा, यज्ञ, दान, व्रतादि, वेदव्रत, वृषोत्सर्ग, चूडाकर्म, व्रतबन्ध, देवतीर्थों में गमन, विवाह, अभिषेक, यान और घर के काम अर्थात् गृहारम्भादि कार्य अधिक मास में नहीं करना चाहिये।।।।

तथा च सूर्योदये -

सूर्योदय के मत से मलमास में कर्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान

आवश्यककर्म मासाख्यं मलमासमृताब्दिकम्।

तीर्थेभच्छाययोः श्राद्धमाधानांगपितृक्रियाम्।।22।।

कुर्यान्मलिम्लुचे वर्षे मध्ये चेत्सर्वदाधिकम्।

तत्र स्यान्मासिकं मृत्युं मासात्स द्वादशो यदि।।23।।

प्रेतक्रियां समाप्यात्र कुर्वीताभ्युदयं तथा।

श्यामाकाग्रयणं कृच्छ्रेण स्याद्वर्ज्यमतोऽन्यथा।।24।।

काम्यारम्भं वृषोत्सर्गं पर्वोत्सवमुपाकृतिम्।

मेखला चौलमांगल्याग्न्याधानोद्यापनक्रियाः।।25।।

वेदव्रतमहादानाभिषेकान्वर्द्धमानकम्।

इष्टं पूर्तं तथा यस्य विध्यलोपोऽन्यदा कृतौ।।26।।

सूर्योदय नामक ग्रन्थ में कहा है कि मास में विहित आवश्यक कार्य, मलमास में मरने वाले का वार्षिक श्राद्ध, तीर्थ व गजच्छाया श्राद्ध, आधानाङ्गीभूत पितरों की क्रिया करना चाहिये। यदि मध्य में किसी के मलमास हो तो एक मास का अधिक ही श्राद्ध होगा, अर्थात् जिस मास में यह प्राप्त होता है उसकी द्विरावृत्ति होती है। यदि मल में ही किसी की मृत्यु हो तो उससे जो बारहवाँ मास हो उसमें प्रेत क्रिया को समाप्त करना चाहिये। और आभ्युदयिक तथा श्यामाकाग्रयण कृच्छ्र के साथ करना चाहिये।

काम्य कार्य का आरम्भ, वृषोत्सर्ग, पर्वोत्सव, उपाकृति, मेखला, चौल, मांगल्य, अग्न्याधान, उद्यापन कर्म, वेदव्रत, महादान, अभिषेक, वर्द्धमान, इष्ट तथा पूर्त कर्म नहीं करना चाहिये और किसी की विधि का विनाश न हो ऐसे कार्य, इसमें करना चाहिये।।।।

स्मृतिरत्नावल्याम् -

स्मृतिरत्नावली के आधार पर कर्त्तव्य -

प्रवृत्तं मलमासात्प्राग्यत्काम्यमसमापितम्।

आगते मलमासेऽपि तत्समाप्यमसंशयम्।।27।।

स्मृति रत्नावली नामक ग्रन्थ में प्रतिपादित है कि, जिस काम्य प्रयोग का आरम्भ मलमास से पूर्व ही हो गया है उसके दिनों की समाप्ति में जो होना चाहिये वह इस अधिक मास में विहित है। अर्थात् उसकी समाप्ति अवश्य ही संदेह रहित होकर करना चाहिये।।।।

फलविवेके-

फल विवेक के आधार पर निषिद्ध कर्म -

मलमासे तु यो यात्रां कुर्यान्मोहेन भूपतिः।

पराजयो भवेत्तस्य कलहो जीवनाशनम्।।।।

फल विवेक नामक ग्रन्थ में लिखा है कि जो राजा मोह के वशीभूत होकर यात्रा इसमें करता है उसकी सेना के सिपाहियों का कलह के साथ नाश और राजा का पराजय होता है।।।।

गर्गः -

गर्ग के मत से

सोमयागादिकर्माणि नित्यान्यपि मलिम्लुचे।

तथैवाग्रयणाधानचातुर्मास्यादिकान्यपि।।29।।

महालयाष्टकाश्राद्धोपाकर्माद्यपि कर्म यत्।

स्पष्टमासे विशेषाढ्याविहितं वर्जयेन्मले।।30।।

गर्गाचार्य जी का आदेश है कि सोमयागादि नित्य कर्म, आग्रयण, आधान, चातुर्मास्यादि, महालय, अष्टका श्राद्ध, उपाकर्मादि मलमास में नहीं करना चाहिये। ये सब स्पष्ट मास में ही होते हैं।

बृहस्पतिः -

बृहस्पति जी के आधार पर -

अग्न्याधानप्रतिष्ठां च यज्ञदानव्रतानि च।

वेदव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरणमेखलाः।।।।

मांगल्यमभिषेकं च मलमासे विवर्जयेत्।।।।

गुरु जी कहते हैं कि, अग्न्याधान, प्रतिष्ठा, यज्ञ, दानव्रतादि, वेदव्रत, वृषोत्सर्ग, चूडाकर्म, यज्ञोपवीत, मांगल्य और अभिषेक मलमास में नहीं करना चाहिये।।।।

मरीचिः -

मरीचि जी के वचन से निषिद्ध कर्म -

गृहप्रवेशगोदानास्थानाश्रयमहोत्सवम्।

न कुर्यान्मलमासे तु संसर्पाहंस्पतौ तथा।।।।

ऋषि मरीचि जी का कहना है कि गृह प्रवेश, गोदान, स्थान का आश्रय, महोत्सव मलमास में तथा संसर्प व अहंस्पति मास में नहीं करना चाहिये।।33।।

वसिष्ठः -

वसिष्ठजी के आधार पर निषिद्ध कार्य -

वापीकूपतडागादिप्रतिष्ठा यज्ञकर्म च।

न कुर्यान्मलमासे तु संसर्पाहस्पती तथा।।34।।

ऋषि वसिष्ठजी का कहना है कि वापी, कुआ, तालाब आदि, प्रतिष्ठा, यज्ञादि कार्य, मलमास व संसर्प, अंहस्पति (क्षय) में नहीं करना चाहिये।।।।

मनुस्मृतौ-

मनुस्मृति के आधार पर कर्त्तव्य -

तीर्थश्राद्धं दर्शश्राद्धं प्रेतश्राद्धं सपिण्डनम्।

चन्द्रसूर्यग्रहे स्नानं मलमासे विधीयते।।35।।

मनुस्मृति में कहा है कि तीर्थ श्राद्ध, दर्श श्राद्ध, प्रेतश्राद्ध, सपिण्डीकरण, चन्द्रसूर्यग्रहणीय

स्नान अधिक मास में करना चाहिये।।।।

पराशरः - पराशर मुनि के आधार पर कर्त्तव्य -

गर्भे वार्धुषिके भृत्ये प्रेतकर्मणि मासिके।
सपिण्डीकरणे नित्ये नाधिमासं विवर्जयेत्।।।।

ऋषि पराशर का कहना है कि अधिक मास में गर्भस्थ की मास संज्ञा, वर्द्धापन कार्य, सेवक की मास संज्ञा, प्रेत कार्य, मासिक कर्म, सपिण्डी करण और प्रतिदिन करने वाले कार्य का त्याग नहीं करना चाहिये।।।।

कात्यायनस्मृतौ-

कात्यायनि स्मृति के आधार पर -

गर्भाधानादिका अन्नप्राशनान्ता मलिम्लुचे।
कर्तव्या कर्णवेधादिक्रिया नान्या कदाचन।।।।

कात्यायनि स्मृति में कहा है कि गर्भाधानादि संस्कार से अन्न प्राशन संस्कार के अन्त तक करना तथा कर्णवेधादि क्रिया अधिक मास में कभी नहीं करना चाहिये।।।।

गणपतिः -

गणपति के आधार पर -

गर्भाधानादिसंस्कारे तथान्नप्राशने शिशोः।
न तत्र गुरुशुक्रास्तमलमासादिदूषणम्।।।।

गणपति का कथन है कि गर्भाधानादि संस्कार में, बालक के अन्न प्राशन समय में गुरु शुक्र अस्तत्व और मलमास जनित दोष नहीं होता है। क्योंकि इसमें काल की प्रधानता होने से उक्त कार्य मलमास में करना चाहिये।।।।

मलमासानयन विधि -

शाकः षड्रसभूपकै (1666) र्विरहितो नन्देन्दु (19)
भिर्भाजितः शेषेऽग्नौ (3) च मधुः शिवे
(11) तदपरो ज्येष्ठेऽम्बरे (10) चाष्टके (8)।
आषाढो नृपते (16) र्नभश्च शरके (5) विश्वे
(13) नभस्यस्तथा बाहू (2) चाश्विनसंज्ञको मुनिवरैः प्रोक्तोऽधिमासः क्रमात्।।।।

मकरन्द ग्रन्थ में कहा है कि शक संख्या में 1666 घटाकर उन्नीस का भाग देने पर यदि 3 शेष बचे तो चैत्र, 11 शेष में वैशाख, 10 में जेठ, 8 में आषाढ, 16 में सावन, 13, 5 में भाद्रपद, और

2 शेष में आश्विन मास होता है। ऐसा श्रेष्ठ ऋषियों का कहना है।।।।

अन्यः -

प्रकारान्तर से उक्त विधि ज्ञान -

अष्टाश्विनन्दै (928) र्वियुते च शाके नवेन्दुभिर्भाजितशेषमङ्कम्।
खं (0) रुद्र (11) अष्टा (8) विषु (5) विश्व
(13) युग्मं (2) चैत्रादितः सप्त सदाधिमासः।।।।

अन्य का कहना है कि शक् संख्या में 928 घटाकर अवशिष्ट में 19 का भाग देने पर यदि शेष 9 हो तो चैत्र, 0 में वैशाख, 11 में जेठ, 8 में आषाढ, 5 में सावन, 13 में भादों, 2 में आश्विन ये चैत्र से सात मास मलमास होते हैं।।।।

अन्यस्तु-

पुनः प्रकारान्तर से

शशिमुनिविधुवह्निर्मि (3171) श्रिता शककाले, द्विगुणमनु
(1432) विहानो नन्दचन्द्रै (19) र्विभक्तः।
यदि भवति सशेषः सध्रुवोऽङ्को विलोक्य
गणकमुनिभिरुक्तं चात्र चैत्रादिमासः।।।।
यदा षोडशके शेषे समासं च द्वितीयकम्।
आषाढमासकं कार्यं ब्रह्मसिद्धान्तभाषितम्।।।।

किसी के मत में शक संख्या में 3171 जोड़कर 1432 घटाकर 19 का भाग देने पर यदि शेष संख्या अधिमास की हो तो उसे देखकर अधिक मास का आदेश करना चाहिये। यहाँ ब्रह्मसिद्धान्त के मत से 16 शेष में आषाढ का ग्रहण करना चाहिये।।।।

अन्यः - अन्यत्रापि -

शाके भानु (12) मिते गुण्यं भागमेकोन (19) विंशतिः।
चैत्राद्या गणनीयाश्च अधिमासाः प्रकीर्तिताः।।।।

अन्य ग्रन्थान्तर में भी कहा है कि शक संख्या को 12 से गुणित करके 19 का देने पर शेष के आधार पर चैत्र आदि अधिक मास की गणना करना चाहिये।।।।

पञ्च मासास्तु वैशाखादधिकाः संव्यवस्थिताः।
भवन्ति चाष्टभिर्वर्षैः भवैर्वाङ्कनिशाकरैः।।।।
तथैव फाल्गुनश्चैत्र आश्विनः कार्तिकोऽधिकः।

एते क्विन्द्रैः (141) शराङ्गैश्च (65) कदाचिद्गोकुवत्सरैः।।।।
मार्गपौषौ क्षयौ स्यातां कदाचित्कार्तिको भवेत्।
अधिमासस्तदा ज्येष्ठे भवेन्नित्यं क्षयो यदा।।।।
क्षयात्प्रागधिमासः स्यान्नित्यं भाद्रपदत्रये।
आश्विनोर्जौ सदा स्यातामादौ भाद्रपदः सकृत्।।।।
यस्मिन्वर्षे कार्तिकक्षयो भवेत्तस्मिन्वर्षे ज्येष्ठोऽधिमासो भवेत्।
अत्र ज्येष्ठशब्देन भाद्रपदो ज्ञेयः।। (बृहद्दैवज्ञरंजनम्/अधिमास)

वैशाख से पाँच मास अधिक 8 या 11 वर्ष में होते हैं। इसी प्रकार फाल्गुन, चैत, आश्विन व कार्तिक मास भी अधिक मास 141 वर्ष या 65 या 19 वर्ष में होता हैं। अगहन व पौष मास प्रायः करके क्षय मास होते हैं तथा कभी कभी कार्तिक मास भी क्षय मास होता है। जब क्षय अगहन या पूस का होता है तो जेठ मास अधिक होता है। क्षय मास से पूर्व भादों से तीन मास अधिक होते हैं। प्रायः अश्विन कार्तिक ही अधिकतम होते हैं। कभी-कभी भादों मास भी अधिक होता है। जिस वर्ष कार्तिक का क्षय होता है तो उस वर्ष जेठ मास अधिक होता है। यहाँ जेठ शब्द से भादों का ग्रहण करना चाहिये।

5.4 अधिकमास की उपपत्ति -

चान्द्रोनसौरेण हृतात्तु चान्द्रादवाप्तसौरैर्दशनैर्दलाढ्यैः।32।16।
मासैर्भवेच्चान्द्रमसोऽधिमासः कल्पेऽपि कल्प्या अनुपाततोऽतः।।10।।
सौरान्मासादैन्दवः स्याल्लघीयान्यस्मात्तस्मात्संख्यया तेऽधिकाः स्युः।
चान्द्राः कल्पे सौरचान्द्रान्तरे ये मासास्तज्ज्ञैस्तेऽधिमासाः प्रदिष्टाः।।11।।
(सि.शि.गोल.)

यहॉ- अधिमास की उत्पत्ति बताई जा रही है -

इस श्लोक का आशय है कि, सौर मास से चान्द्रमास लघु होने के कारण किसी बड़ी संख्या में छोटी संख्या से भाग देने पर लब्धि अधिक होगी अपेक्षया उक्त उसी बड़ी संख्या में बड़ी संख्या से भाग देने से। अतएव कल्प सम्बन्धी सौर चान्द्रादि मासों में कल्प सौरमास संख्या से कल्पचान्द्र मास संख्या अधिक होती है। अतएव सौरमास संख्या से चान्द्र मास संख्या जितनी अधिक होती है उसी माप से युग अधिमास, महायुगाधिमास, या कल्पाधिमास संख्या अधिक ही होगी । अतः चान्द्रात्मक अधिक मास, चान्द्र और सौर मासों के अन्तर के तुल्य सिद्ध होते हैं।

इस प्रकार 32 मास, 16 दिनादि घटिकात्मक सौरमानीय काल में 1 चान्द्र मास संख्या

अधिक हो जाने से इतने समय में चान्द्रमास संख्या 33 हो जाती हैं।

उपपत्ति - कल्पकुदिन या एक महायुग सम्बन्धी सौर वर्ष में सौर चान्द्र मासों की नियत संख्या शास्त्र में बता दी गई है।

एक सौर मास की सावन दिन संख्या = 365।15।22।30 /12 = 30।26।17 में एक चान्द्र मास सम्बन्धी सावन दिनादि = 29।31।50 को

कम करने से सावनादिनात्मक शेष = 0।54।27 होता है।

अर्थात् एक सौरमास में सौर चान्द्र कुदिनों का अन्तर = 0।54।27 होता है।

उक्त अन्तर में यदि एक सौर मास की प्राप्ति होती है तो एक चान्द्र मासान्तःपाती

सावनदिनात्मक संख्या में कितने सौर मास प्राप्त होंगे, त्रैराशिक अनुपात से -

$$\frac{1 \text{ सौरमास} \times 60 \,|31\,|50}{0\,|54\,|27} = 32|15|31|28|27$$

सौर मासों में एक चान्द्रात्मक अधिकमास गणित से सिद्ध होता है।।

सौरेभ्यः साधितास्ते चेदधिमासास्तदैन्दवाः।
चेच्चान्द्रेभ्यस्तदा सौरास्तच्छेषं तद्वशात्तथा।।
सावनान्यवमानि स्युश्चान्द्रेभ्यः साधितानि चेत्।
सावनेभ्यस्तु चान्द्राणि तच्छेषं तद्वशात्तथा।।

अर्थात - सौर मान से साधित अधिमास का मान चान्द्रमान में, और चान्द्र मान से साधित अधिमास का मान सौर मान में होता है तथा लब्ध अधिमास में जो अधिशेष होता है वह भी सौर साधित चान्द्र एवं चान्द्र साधित सौर मानात्मक होता है।

तथैव, चान्द्रमान एवं सौर मान से साधित अवम और अवम शेष भी क्रमशः सावन और चान्द्र मानात्मक होते हैं।।

5.4.1 अधिमास का गणितीय उपपत्ति -

सैद्धान्तिक दृष्टि के आधार पर जब भी दो अमान्त के मध्य में संक्रान्ति का अभाव हो जाये तो उसे अधिमास की संज्ञा दी जाती है। क्योंकि सिद्धान्त बताया गया है कि -

मेषादिस्थे सवितरि यो यो मासः प्रपूर्यते चान्द्रः।
चैत्राद्यः स विज्ञेयः पूर्तिर्द्वित्वेऽधिमासोऽन्यः।।

अर्थात् मेषादि राशियों पर गमन करता हुआ सूर्य जब-जब चान्द्रमासों की पूर्ति करता है उस मासों को क्रम से चैत्रादि मास की संज्ञा दी गई है। जिसमें संक्रान्ति की पूर्ति नही होती है उसे अधिमास

कहते हैं।

इसका सैद्धान्तिक कारण अन्वेषज्ञण करते हैं तो पाते हैं कि, व्यवहार में सौर-चान्द्रमासों की गणना प्रचलित है। इन दोनों के साथ सावन दिनों का सम्बन्ध भी जुड़ा हुआ है।

चान्द्रमास = 30 तिथ्यात्मक मान

सौरमास - एक संक्रान्ति से दूसरे संक्रान्ति तक

सावन - एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय का मध्य।

मध्यम मान से सौरमास 30:26:17 सावन दिनादि प्रमाण का होता है।

1 चान्द्रमास में 29:31:50 सावन दिनादि प्रताण होता है। दोनों का अन्तर=

सौरमास 30:26:17

चान्द्रमास 29:31:50

0:54:26 यह अधिशेष कहलाता है।

यह अधिशेष जब बढ़ते हुए 1 चान्द्रमास के तुल्य हो जाता है, तो वह अधिकमास होता है। जैसे यह कितने सौरमास पर पतित होगा यह जानना है तो अनुपात करते हैं कि -

$$\frac{1 \text{ चान्द्रमास } (29:31:50)\times 1}{0:54:27} = 32:16:4 \text{ मासादि प्राप्त ।}$$

होता है। अर्थात् 32:16:4 सौरमास व्यतित होने पर 1 अधिकमास पतित होता है। यही कारण है कि प्रत्येक तीसरे वर्ष एक अधिमास अवश्य आता है।

5.5 क्षयमास की उपपत्ति -

जब एक ही चान्द्रमास में 2 बार सूर्य की संक्रान्ति जब होती है तब उस चान्द्रमास को क्षयमास कहते हैं यहाँ आचार्य भास्कर कहते हैं कि,

''असंक्रान्तिमास ----------

द्विसंक्रान्तिमासः क्षयाख्यः कदाचित् ।

क्षयः कार्तिकादित्रये नान्यतः स्युः।

तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयं च।।

- सि.शि. मध्यमा.

अर्थात् आचार्य कहते हैं कि, क्षय संज्ञा होती है, समस्त मास के मान का क्षय नहीं होता है। केवल दिनात्मक अन्तर उत्पन्न होता है। आगे आचार्य लिखते हैं कि, यह कभी-कभी ही होता है सर्वदा नहीं होता है और जिस वर्ष क्षयमास पतित होता है उस वर्ष में 3 मास पहले और 3 मास बाद भी

एक-एक अधिक मास पड़ता है। जब भी सूर्य की गति कम होती है तो मास के भोग में अधिक समय लगता है तथा जब गति अधिक होती है तो मास के भोग में कम समय लगता है और गति की अधिकता के कारण ही सूर्य की एक चान्द्रमास में 2 बार संक्रान्ति होती है और क्षयमास भी पतित होता है। ''क्षयः कार्तिकादि प्रसंग में उपपत्ति यहाँ आचार्य कहते हैं कि आदौ कार्तिकः अस्य स मार्गशीर्ष पौष-माघ मासों में ही क्षयमास की संभावना होगी। कारण प्रसंग का यदि हम निरुपण करें तो पाते हैं कि मार्गशीर्षादि 3 मासों में ही क्षयमास पतित होता है। इसके कारण प्रसंग में आचार्य कहते हैं कि, जब सूर्य की गति 61 कला के आसन्न होती है तो ऐसी स्थिति में सूर्य मास की पूर्ति जल्दी-जल्दी करता है और एक चान्द्रमास में 2 संक्रान्ति संभव होती है। ऐसी स्थिति, धनु-मकर के सूर्य में ही होती है अत-एव मार्गशीर्षादि त्रय मासों में ही क्षयमास पतित होता है। जब भी ऐसी स्थिति होती है क्षयमास के पूर्व गत्यल्प के कारण मास की पूर्ति अधिक काल में होता है तो अधिकमास पतित होता है। क्षयमास के बाद मास त्रयान्तर में भी यही स्थिति होती है तो अधिमास पुनः दूसरा पतित होता है। यह त्रयमास कब-कब पतित होगा ऐसी स्थिति में आचार्य कहते हैं कि,

''कुवेदेन्दुवर्षै क्वचिद् गोकुवर्षे' अर्थात् 141 वर्ष या 19 वर्षों में यह कभी-कभी पतित होता है।

5.6 सारांशिका -

- मासपरिज्ञान प्रसंग में अधिकमास का ज्ञान परमावश्यक है, क्योंकि धार्मिक एवं ज्योतिषीय दोनों की दृष्टि से अधिकमास का आनयन एवं विचार महत्त्वपूर्ण है।
- शुभाशुभ कार्यों में अधिकमास एवं क्षयमास दोनों का विचार-विमर्श शास्त्रों में गंभीरता पूर्वक किया गया है। अतएव ऐसी परिस्थिति में इसकी विस्तृत परिचर्चा यहाँ संग्रहीत है।
- अधिकमास एवं क्षयमास में वर्णित एवं प्रतिपादित समस्त कार्यों का विधिवत् उल्लेख किया गया है।
- अधिमास एवं क्षयमास दोनों का गणितीय स्वरुप एवं उपपत्ति भी पूर्णरुपेण प्रतिपादित है।
- कब-कब अधिमास एवं क्षयमास पतित होगा, इसको संवत् के आधार पर टेबल के माध्यम से वर्णित किया गया है।

5. 7 शब्दावली (पारिभाषिक) -

मास - मस्ये परिमियते इति मासः (काल प्रमाण ही मास है)

सौरमास - सूर्य की एक संक्रानित से दूसरी संक्रान्ति तक 1 सौरमास होता है।

चान्द्रमास - अमान्तकाल से अमान्तकाल तक की अवधि को चान्द्रमास कहते हैं।

संक्रान्ति - राशि परिवर्तन का नाम संक्रान्ति है।

सावन दिन - एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय का काल सावन दिन कहलाता है।

5.8 अभ्यास प्रश्नोत्तर -

1.चान्द्रमान किसे कहते हैं? - अमान्त से अमान्त तक

2. सौर-चान्द्र का अन्तर क्या कहलाता है। - अधिदिन

3. अमान्त से अमान्त तक क्या कहलाता है? - चान्द्रमास

4. एक सौरवर्ष में सावनदिन की संख्या कितनी है। - 365 दिन

5. जिस वर्ष क्षयमास पतित होता है उस वर्ष अधिकमास कितने होते हैं। - 2 मास

6. क्षयमास किन तीन मासों में आता है। - मार्गशीर्षादि 3 मास में

7. क्षयमास कितने वर्षों बाद सम्भावित होता है। - 19 वर्ष के बाद,

8. सबसे अधिक सूर्य की गति कितनी होती है। - 61 कला 20 विकला

5.9 सन्दर्भ ग्रन्थसूची -

नाम	लेखक	प्रकाशक
सूर्यसिद्धान्त	प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय	चौखम्भा भवन
सिद्धान्तशिरोमणि	डॉ. सत्यदेव शर्मा	चौखम्भा पब्लिकिंग हाउस
ग्रहलाघवम्	प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय	..
सिद्धान्ततत्त्वविवेक	डॉ. मुरलीधर चतुर्वेदी	सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
बृहद्दैवज्ञरंजनम्	डॉ. मुरलीधर चतुर्वेदी	मोतीलाल बनारसीदास

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अधिमास से आप क्या समझते है? स्पष्ट कीजिये।

2. अधिमास की उपपत्ति लिखिये।

3. क्षयमास क्या है। विस्तृत वर्णन कीजिये।

4. क्षयमास की उपत्ति लिखिये।

5. अहर्गण में अधिकमास एवं क्षयमास के प्रयोजन पर प्रकाश डालिये।

एम. ए. ज्योतिष

द्वितीय सेमेस्टर

खण्ड – 4

ग्रहानयन

इकाई - 1 अहर्गण एवं मध्यम ग्रहसाधन

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 अहर्गण परिचय

1.3.1 अहर्गण साधन

1.3.2 विभिन्न सिद्धान्तों के अनुसार अहर्गण ज्ञान

1.4 मध्यम ग्रह साधन

1.5 सारांश

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई–506 चतुर्थ खण्ड की प्रथम इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है - अहर्गण एवं मध्यम ग्रह साधन। इससे पूर्व की ईकाइयों में आपने काल मान से जुड़े विविध मानों को जान लिया है। अब आप सिद्धान्त ज्योतिष में और विस्तृत ज्ञान हेतु उसके प्रथम सोपान अहर्गण के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

अहर्गण गणित ज्योतिष का प्रथम इकाई है, क्योंकि अहर्गण के बिना ग्रहों का गणित करना सम्भव नहीं है। अहर्गण दिनों का समूह होता है।

अहर्गण की सिद्धि सिद्धान्त, तन्त्र एवं करण तीनों ग्रन्थों के द्वारा किया जाता है। आइए इस इकाई में अहर्गण के बारे में जानने का प्रयास करते है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- अहर्गण को परिभाषित कर सकेगें।
- अहर्गण की सिद्धि कर सकेगें।
- सिद्धान्त, तन्त्र एवं करण तीनों ग्रन्थों के द्वारा अहर्गण को बता सकेगें।
- अहर्गण का महत्व को समझा सकेगें।

1.3 अहर्गण परिचय

सामान्यतया अहर्गण शब्द का अर्थ होता है – दिनों का समूह। संस्कृत में इसको इस प्रकार भी जान सकते है - अह्नां नाम दिनानां, गण: अर्थात् समूह: अयमेव दिनानां समूहो अहर्गण: कथ्यते। अर्थात् दिनों के समूह को 'अहर्गण' कहते है। अहर्गण के चार प्रकार हैं – सौर, सावन, चान्द्र और नाक्षत्र। इनमें ग्रहसाधन हेतु तथा गणितीय क्रियाकलापों के लिए सावनाऽहर्गण का प्रयोग किया जाता है।

अहर्गण साधन की आवश्यकता क्यों हैं?

अभीष्ट समय में ग्रहों की स्थिति क्या हैं? इसको जानने के लिए अहर्गण का साधन किया जाता है। अहर्गण साधन के तीन प्रकार हैं – 1. सिद्धान्त ग्रन्थानुसार 2. करण ग्रन्थों से तथा 3. तन्त्र ग्रन्थों के द्वारा। युगादि से जहाँ अहर्गण साधन किया जाता हैं, उसका नाम **तन्त्र** है। शकादि से अहर्गण साधन की विधि **करण** ग्रन्थों में बतलायी गयी हैं तथा सृष्ट्यादि या कल्पादि से जहाँ

अहर्गण साधन का विवेचन प्राप्त होता है, उसे **सिद्धान्त** कहते हैं। अहर्गण के बिना हम गणित ज्योतिष में प्रवेश नहीं पा सकते। अत: ग्रहों का आनयन हेतु अहर्गण का ज्ञान परमावश्यक हैं।

1.1.1 अहर्गण साधन

ग्रहलाघव ग्रन्थ के अनुसार -

द्वयब्धीन्द्रो नितशक ईशहृत्फलं स्यात् चक्राख्यं रवि हतशेषकं तु युक्तम्।
चैत्राद्यै: पृथगमुत: सदृग्घ्नचक्राद् दिग्युक्तादमरफलाधिमासयुक्तम्।।
खत्रिघ्नं गततिथियुङ्निरग्रचक्रांगाशाढ्यं पृथगमुतोऽब्धिषट्कलब्धै:।
ऊनाहैर्विंयुतमहर्गणो भवेद् वै वार: स्याच्छरहृतचक्रयुग्गणोऽब्जात्।।

अहर्गण साधन विधि- इसके लिए हमें निम्न अंशों की आवश्यकता होगी। चक्र साधन, मध्यम मासगण, अधिक मासगण, मासगण, मध्यम अहर्गण, क्षयदिवस आदि।

- क्रमश: - अभीष्ट शक $-\frac{1442}{11} =$ लब्धि चक्र होगी, शेष रख लें
- मध्यम मासगण = (शेष × 12) + गत मास (इष्टमास को छोडकर बीते हुए माह)
- अधिकमास $= (\text{चक्र} \times 2) + 10 + \frac{\text{मध्यममासगण}}{33}$
- मासगण $=$ मध्यम मास $+$ अधिमासगण
- मध्यम अहर्गण $= (\text{मासगण} \times 30) + \text{गत तिथि} + \frac{\text{चक्र}}{6}$ (लब्धि)
- क्षयदिवस $=$ मध्यम अहर्गण $\div 64$
- अहर्गण $=$ मध्यम अहर्गण $-$ क्षयदिवस
- शेषवार $= \frac{(\text{चक्र} \times 5) \div \text{अहर्गण}}{7}$

चलिए अब इसका अभ्यास करते हैं-

जैसे शक 1835, श्रावण शुक्ल 12, बुधवार का अहर्गण निकालना है।

अहर्गण साधन नियमानुसार-

$1835 - 1442 = \frac{393}{11}$ लब्धि $- 35$ चक्र, शेष 08

शेष 8 $\times$ 12 $= 96 + 4 = 100$ मध्यममासगण

चैत्र से गत मास आषाढ़ तक गिनने पर 4 गत मास आए

$\frac{(35 \times 2) + 10 + 100}{33} = \frac{180}{33} = 5$ लब्धि $=$ अधिमासगण,

और शेष 15 अनावश्यक, $100 + 5 = 105$ मासगण

$105 \times 30 = 3150 +$ गततिथि $11 + 5 = 3166$ मध्यम अहर्गण

अब अहर्गण वे $\frac{3166}{64} = 49$ लब्धि क्षयदिवस, $3166 - 49 = 3117$ स्पष्ट अहर्गण।

$$\frac{\text{अहर्गण} - 373}{2520} = \text{लब्धि को दो स्थान में रखें।}$$

- प्रथम स्थान पर - लब्धि/ 360 = लब्धि × 3 + 1 = प्रथम फल
- प्रथम फल/ 7 = वर्षपति होगा।
- द्वितीय स्थान पर - लब्धि/ 30 = लब्धि × 2 +1 = द्वितीय फल
- द्वितीयफल/ 7 = मासपति होगा।

1.1.2 विभिन्न सिद्धान्तानुसार अहर्गण साधन

सूर्यसिद्धान्त के अनुसार अहर्गण –

अत उर्ध्वममी युक्ता गतकालाब्दसंख्यया।
मासीकृतायुता मासै: मधुशुक्लादिभिर्गतै:।।
पृथक्स्थास्तेऽधिमासघ्ना: सूर्यमासविभाजिता:।
लब्धाधिमासकैर्युक्ता दिनीकृत्य दिनान्विता:।।
द्विष्ठास्तिथिक्षयाभ्यस्ताश्चान्द्रवासरभाजिता:।
लब्धोनरात्रिरहिता लंकायामार्धरात्रिक:।।

सृष्टि के आदि से सत्ययुग के अन्त तक के सौर वर्षों में सत्ययुग के उपरान्त जितने सौरवर्ष व्यतीत हों गये हो उनका योग कर ले। योगफल इष्टकाल तक के सौर वर्षो की संख्या होगी। इसके मास बना ले अर्थात् १२ से गुणा कर ले। मासों की संख्या में चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से इष्टकाल तक जितने मास व्यतीत हो गये हों, उनको भी जोड़ दो। इस संख्या को दो स्थानों पर रखे, एक को महायुग के अधिमासों की संख्या से गुणा कर महायुग के सौर मासों की संख्या से भाग दे, जो लब्धि आवे वही सृष्टि की आदि से इष्टकाल तक के अधिमासों की असंख्या होगी। इस लब्धि को दूसरे स्थान में रखे हुए मासों में जोड़ दे। योगफल सृष्टि की आदि से इष्टकाल तक के चान्द्र मासों की संख्या है। इसको ३० से गुणाकर चान्द्रदिन अर्थात् तिथि बना ले और इष्टकाल तक वर्तमान मास की जितनी तिथियाँ व्यतीत हों उनका योग कर ले तो सृष्टि की आदि से इष्टकाल तक जितनी तिथियाँ व्यतीत हुई हैं वह ज्ञात हो जायेगी। इन तिथियों की संख्या को भो दो स्थान में रखकर एक को महायुगीय क्षय तिथियों की संख्या से गुणा कर और गुणनफल को महायुगीय तिथियों की संख्या भाग दें, जो लब्धि आवे वही सृष्टि के आदि से इष्टकाल तक की क्षयतिथियों की संख्या हुई। इसको दूसरे स्थान में रखी हुई तिथियों की संख्या में से घटा दे, जो शेष बचे उससे एक कम लंका की अर्द्धरात्रि तक सावन दिनों

की अहर्गण संख्या होगी।

सूर्यसिद्धान्तीय कलियुग के आरम्भ से अहर्गण साधन का उदाहरण –

दिनांक: - १३ अप्रैल २०१३, संवत् – २०७०, शक् – १९३५, वैशाखकृष्णपक्ष:, तिथि: - तृतीया, वार:-शनिवासर: अश्विन्यां मेषेचार्क: (अश्विनी नक्षत्र तथा मेष राशि में सूर्य का प्रवेश दिन), युगअधिमासा: - १५९३३३६, युगसौरमासा: - ५१८४०००, युगअवमशेष: - २५०८२२५२, युगचान्द्रदिन – १६०३०००००८०।

वर्तमान कलियुग का व्यतीत सौरमान - ५११४ सौरवर्ष। अब यहाँ सूत्र द्वारा अहर्गण साधन करते हैं -

५११४

× १२

६१३६८

+ ० – गतमास

६१३६८

अनुपात करते है - यदि युगसौरमास में युगअधिमास मिलता है तो इष्टसौरमास में क्या मिलेगा?

युगाधिमास × इष्टसौरमास

युगसौरमास

१५९३३३६ × ६१३६८

५१८४०००

= ९७७७९८४३६४८ ÷ ५१८४०००

लब्धि = १८८६

+ ६१३६८

६३२५४

× ३०

१८९७६२०

+ १७

१८९७६३७ इष्टचान्द्रतिथि

पुन:, यदि युगचान्द्रदिन में युगअवमशेष मिलता है, तो इष्ट चान्द्रतिथि में क्या मिलेगा?

२५०८२२५२ × १८९७६३७ ÷ १६०३०००००८०

= ४७५९७००९४३८५२४ ÷ १६०३०००००८०

लब्धि = २९६९२ क्षय तिथि (अवम तिथि)

१८९७६३७

- २९६७५

१८६७९६२ सावन अहर्गण।

वार ज्ञान के लिए –

१८६७९६२ ÷ ७ = लब्धि = २६६८५१, शेष = ५ + १ = ६ रविवारा से गणना करने पर शनिवार अभीष्ट वार आ जायेगा।

सिद्धान्तशिरोमणि में कथित अहर्गण –

कथितकल्पगतोऽर्कसमागणो
रविगुणो गतमाससमन्वित:।।
खदहनैर्गुणितस्तिथिसंयुत:।
पृथगतोऽधिकमास समाहतात्।।
रविदिनाप्तगताधिकमासकै:
कृतदिनै: सहितो द्युगणो विधो:।
पृथगत: पठितावम संगुणाद्
विधुदिनाप्तगतावमवर्जित:।।
भवति भास्करवासरपूर्वको दिनगणो रविमध्यमसावन:।
अधिकमासदिनक्षयशेषतो द्युघटिकादिनकमत्र न गृह्यते।।

अर्थात् कल्पारम्भ से गताब्द तुल्य सौर वर्षों को १२ से गुणा करके (गतवर्ष के रविमास प्राप्त होंगे। इनमें चैत्रारम्भ से वर्तमान वर्ष के) गतचान्द्रमास संख्या (सौरमास मान कर) युत करके तीस से गुणा करके इष्टमास की (प्रतिपदा से) गत तिथि (सौर तिथि तुल्य मान कर) युत करके इसको पृथक् स्थान पर कल्पाधिमास १५९३३००००० से गुणा करके कल्प रवि दिन १५५५२००००००० से भाग देने से प्राप्त अधिमास संख्या के दिन बनाकर (पूर्वोक्त) अहर्गण में जोड़ दें। फिर इन प्राप्त चान्द्र दिनों को कल्प अवम दिन संख्या २५०८२५५०००० से पृथक स्थान पर गुणा करके कल्पचान्द्र दिवस संख्या १६०२९९९०००००० से विभक्त करने से प्राप्त फल को अहर्गण में घटाने से पूर्वोक्त रविदिनगण संख्या से रविमध्यम सावन दिन संख्या प्राप्त होती है। यहाँ अधिकमास तथा दिन क्षय में प्राप्त शेष की दिन घटिकादि को ग्रहण नहीं करना चाहिये।

विशेष – भास्कराचार्य जी के अनुरूप अहर्गण साधन ज्योतिष शास्त्र के सभी पूर्ववर्ति तथा परवर्ती आचार्यों ने अपने-अपने ग्रंथों कहा है लेकिन भास्कराचार्य जी में विशेष बात यह है कि – वो कहते है कि इस प्रकार साधित अहर्गण मध्यम मान का है, स्फुट नहीं है। अर्थात् वास्तविक अहर्गण से यह अहर्गण संख्या भिन्न हो सकती है। इनके अतिरिक्त वटेश्वर सिद्धान्त के प्रतिपादक वटेश्वराचार्य जी ने अनेक विधियों से अहर्गण साधन अलग से 'द्युगण: विधि' अध्याय के द्वारा बतलाया है।

मकरन्दप्रकाश के अनुसार अहर्गणानयनम् –

मकरन्दप्रकाश ग्रन्थ के रचयिता आचार्य नारायणदैवज्ञ ने मध्यमाधिकार के आरम्भ में अहर्गण का साधन इस प्रकार बतलाया है -

नवनगेन्द्रकृशानुसमन्वितो भवति शाकगणो गतवत्सरः।
कलिमुखादथ भानुगणो गतैर्मधुसितादिकमासचयैर्युतः।।
त्रिकगतः स च खाद्रिहृदाप्तयुक् सुरहृदाप्तगताधिकमासयुक्।
खगुणसंगुणितस्तिथिसंयुतः पृथगसौ शिवसंगुणितस्तथा।।
गुणनभोधरणीधरभाजितोऽथ स च लब्ध दिनावमवर्जितः।
दिनगणो रविमध्यम सावनः सितमुखो भवतीह निशादले।।

अर्थात् इष्ट शकाब्द में ३१७९ जोड़ने से कलिगताब्द होता है। उसको १२ से गुणाकर उसमें गत चैत्र शुक्लादि चान्दमास की संख्या जोड़कर तीन स्थानों में लिखकर प्रथम स्थान में ७० का भाग देकर लब्धि को द्वितीय स्थान में जोड़े, फिर उसमें ३३ से भाग देने पर लब्धि गताधिमास को तृतीय स्थान में जोड़ दें। बाद में उसको ३० से गुणाकर गत अमावस के बाद इष्ट तिथि पर्यन्त की संख्या जोड़कर दो जगह प्रथम स्थान में ७०३ का भाग देकर लब्धि अवमदिन को प्रथम स्थान में स्थित अंक में घटाने से रात्र्यर्धकालिक शुक्रवारादिक मध्यम सावनात्मक अहर्गण होता है।

विशेष – मकरन्दप्रकाश में कलियुगादि से इष्ट दिन पर्यन्त का अहर्गण साधन किया गया है। अधिमास के पश्चात् यदि इष्ट तिथि हो, तब गतमास में उसकी गणना नहीं करनी चाहिये। अधिमास में इष्ट तिथि हो, तब इष्ट तिथि की संख्या में अधिमास की तिथि भी ग्रहण होती है। कलियुग का प्रारम्भ शुक्रवार को हुआ था, अतः शुक्रवारादि से वार की गणना होती है। अहर्गण में ७ का भाग देकर शेष के अनुसार शुक्रादिवार जानना चाहिए।

मकरन्दीय अहर्गण का उदाहरण

वर्तमान शक - १९३५ श्रावण कृष्ण प्रतिपदा तिथि, भौमवार का अहर्गण साधन।

इष्ट शकाब्दा: - १९३५

अतः सूत्र से –

१९३५ + ३१७९ = ५११४ = कलिगताब्द

अतः ५११४ × १२ = ६१३६८ = सौरमास

अत्र चैत्रादिगत शुक्लादि चान्द्रमाससंख्या = ३

६१३६८ + ३ = ६१३७१ - इसे तीन स्थानों पर रखना हैं।

प्रथम मान में ७० का भाग देकर लब्धि को द्वितीय स्थान में जोड़ने पर -

प्रथम स्थान - ६१३७१ ÷ ७० = ८७६

द्वितीय स्थान - ६१३७१ + ८७६ = ६२२४७ इसे सुर अर्थात् ३३ अंश से भाग देकर तृतीय स्थान में जोड़ने पर –

तृतीय स्थान - ६१३७१ + १८८६ = ६३२५७

६३२५७ × ३० = १८९७६२०

गत आषाढकृष्ण अमान्तादिष्टतिथि संख्या = १६

१८९७६२० + १६ = १८९७७१०

इसे दो स्थान पर रखकर प्रथम मान में ११ से गुणा कर ७०३ से भाग देने पर – लब्धि: = २९६९३

अत: १८९७६२० – २९६९३ = १८६७९२७ इष्टदिवस का अहर्गण हुआ।

अहर्गणोसैकनिरेककरण कथनम् -

दिनगणेऽद्रिहृतेऽभिमतो यदा नहि भवेद् दिवसो दयुगुणस्तदा।

शशिविहीनयुतोऽपि च वास्तवो दिनगण: कथितो गणकोत्तमै: ।।

अहर्गण में ७ का भाग देने पर यदि अभिष्ट वार की प्राप्ति नहीं होती, तो एक जोड़ने या घटाने से अभीष्ट वार की प्राप्ति हो जाती है।

बोध प्रश्न -

1. अहर्गण शब्द का अर्थ होता है –
   क. समूह ख. दिनों का समूह ग. दिन घ. रात्रि का समूह
2. युगादि से इष्टदिन पर्यन्त जहाँ अहर्गण साधन किया जाता है, उसे क्या कहते है।
   क. सिद्धान्त ख. तन्त्र ग. करण घ. संहिता
3. ग्रहलाघव में अहर्गण साधन किस मान से किया गया है?
   क. युगादि से ख. शकादि से ग. कल्पादि से घ. सृष्ट्यादि से
4. सूर्यसिद्धान्त में अहर्गण साधन कहाँ से किया जाता है?
   क. सृष्ट्यादि से ख. शकादि से ग. युगादि से घ. कोई नहीं
5. अहर्गण साधन क्यों किया जाता है?
   क. ग्रहों की स्थिति जानने के लिए ख. नक्षत्रों को समझने के लिए ग. तारों को जानने के लिए घ. ब्रह्माण्ड को जानने के लिए
6. वार के ज्ञान के लिए अहर्गण में कितनी संख्या का भाग देते है?
   क. ५ ख.६ ग.७ घ. ८
7. अहर्गण साधन का मान क्या होता है?
   क. सौर ख. चान्द्र ग. नाक्षत्र घ. सावन

आचार्य वेंकट कृत् केतकीग्रहगणित के अनुसार अहर्गण साधन –

व्यभ्राभ्रेभकु १८०० शकनंदचन्द्रलब्धि

श्चक्राख्यारवि १२ हतशेषकं तु युक्तम्।

चैत्राद्यैः पृथगमुतः शरा प्तचक्रा
शा १० युक्तादमरलाधिमासयुक्तम्।।
खत्रि ३० घ्नं गततिथियुक् शरद्गणाभ्रां
गां ६० शोनं पृथगमुतोऽब्धिषट्कलब्धैः।
उनाहैर्वियुतमहर्गणो भवेद् वै
वारः स्यादगुण ३ हतचक्रयुग्गणोज्ञात्।।

अहर्गण साधक सूत्र

अभीष्टशालिवाहनशक - १८०० = वर्षगण।

वर्षगण ÷ १९ = गतचक्र।

(चक्रशेष × १२) + गतमास = सौरमास।

$$\frac{\text{सौरमास} + १० + \text{गतचक्रपञ्चमांश}}{३३} = \text{अधिमास।}$$

सौरमासा + अधिमासा = चान्द्रमासा

(चान्द्रमासा × ३०) + गततिथिगण - (वर्षगण ÷ ६०) = तिथिगण ।

तिथिगण ÷ १९ = क्षयतिथिगण।

तिथिगण - क्षयतिथिगण = अहर्गण।

वारज्ञानार्थंसमीकरणम् –

$$\frac{\text{अहर्गण} + (\text{चक्र} \times ३)}{७}$$

शेष की गणना बुधादिवार से होती है। शून्य आने पर उसे बुधवार के रूप में ग्रहण करना चाहिये।

1.2 मध्यम ग्रह साधन

ग्रह को भूमण्डल की एक प्रदक्षिणा करने में जितना समय लगता है तदनुसार उसकी एक दिन की जो मध्यम गति आती है, आकाश में प्रतिदिन उतनी ही नहीं बल्कि उससे कुछ न्यून या अधिक का अनुभव होता है। इस कारण मध्यम गति द्वारा इष्टकाल में उसकी स्थिति जहाँ आती है वहाँ वह उस समय नहीं दिखाई देता। आकाश में प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाली गतिस्थिति को स्पष्ट गतिस्थिति कहते हैं। ग्रहों के स्पष्ट आनयन हेतु विदित हो कि मध्यम ग्रह का साधन अहर्गण द्वारा किया जाता है। पृथ्वी के मध्य को केन्द्र मानकर ग्रहकक्षावृत्त का निर्माण करते है। भूमध्य के बाहर एक बिन्दु को केन्द्र मानकर दूसरा (उतना ही बड़ा) वृत्त बनाते हैं, जिसे प्रतिवृत्त कहते हैं। यही प्रतिवृत्त मध्यमग्रह का भ्रमणमार्ग माना जाता है।

ग्रहलाघव के अनुसार ग्रहों की अहर्गण गति को उनके क्षेपक में जोड़ देने से वे मध्यम बनते हैं। उदाहरण के लिए मध्यम रविबुधशुक्र का आनयन इस प्रकार कहा गया है –

स्वखनगलव हीनो द्युव्रजोऽर्कज्ञशुक्रा।

खतिथिहृतगणोनो लिप्तिकास्वंशकाद्या:।।

कल्पना किया कि अहर्गण का मान यदि -१३३ है, तो

१३३ ÷ ७० = १।५४।० अंशादि

७०) १३३ (१
७०
६३×६० = ३७८०

७०)३७८०(५४
३५०
२८०
२८०
०

१३३।०।० – अंशादिक अहर्गण
– १।५४।० – अंशदिक फल
१३१ ।६ । ० शेष अंशादि मान

पुन: अहर्गण में १५० संख्या से भाग दिया।

१३३ ÷ १५० = ० कलादि फल आया।

१३१ ।६।० अंशादि रविबुधशुक्र।

तथा राश्यादि बनाने के लिए अंशादि मान में ३० से भाग देने पर

१३१ ÷ ३० = ३०) १३१(४
१२०
११ शेष

४ । ११ । ० । ० राश्यादि रविबुधशुक्र हुआ।

पुन: सूर्य की ध्रुवा – ०।१।४९।११ × ४५ (चक्र) = २।२१।५३।१५

अर्हगण से उत्पन्न ग्रह का मान – ४। ११।०।०
– २।२१।५३।१५
१।१९।६।४५

सूर्य की राश्यादि क्षेपक मान + ११।१९।४१।०

१३।८।४७।४५ मध्यमरविबुधशुक्र।

१।९।४७।४५ राश्यादि मध्यमरविबुधशुक्र मान होगा।

सूर्य सिद्धान्त द्वारा मध्यम ग्रह साधन –

यथास्वभगणाभ्यस्तो दिनराशि: कुवासरै:।

विभाजितो मध्यगत्या भगणादिर्ग्रहो भवेत्।।

प्राप्त अहर्गण में किसी ग्रह के महायुगीय भगण को गुणा कर दीजिये और गुणनफल को महायुगीय सावन दिनों से भाग दे दीजिये, जो लब्धि आवेगी उतने ही भगण उस ग्रह के (सृष्टि के आदि से) मध्यम गति के अनुसार पूरे हुए है, ऐसा समझना चाहिये। जो शेष बचे उसको १२ से गुणा करके फिर महायुगीय सावन दिनों से गुणा करके फिर महायुगीय सावन दिनों से भाग देने से उस राशि की संख्या आयेगी जितनी राशियाँ वह ग्रह वर्तमान भगण में पूरा कर चुका है। अब जो शेष बचे उसको ३० से गुणा करके महायुगीय सावन दिनों की संख्या से भाग देने पर उन अंशों की संख्या निकल आयेगी जितने अंश वह ग्रह वर्तमान राशि में पूरा कर चुका है।

यहाँ त्रैराशिक अनुपात द्वारा मध्यम ग्रह साधन का सूत्र इस प्रकार है –

$$\frac{\text{कल्पग्रहभगण} \times \text{अहर्गण}}{\text{कल्पकुदिन}} = \text{एकदिवसीय मध्यम ग्रह।}$$

सूर्यसिद्धान्त में सभी ग्रहों का भगणमान दिया हुआ है। जैसे सूर्य, बुध एवं शुक्र का-४३२०००० , चन्द्रमा का -५७७५३३३६, मंगल का – २२९६८३२, गुरु का -३६४२२०, शनि का-१४६५६८

मध्यम सूर्य का गणितीय साधन

कल्पना किया कि अहर्गण का मान – १८६६८३५, कल्पकुदिन – १५७७९१७८२८

तथा कल्पग्रह भगण का मान - ४३२०००० । अत: पूर्व में कथित सूत्र द्वारा यह मध्यम सूर्य का साधन करते हैं -

$$\frac{४३२०००० \times १८६६८३५}{१५७७९१७८२८} \div = \frac{८०६४७२७२००००}{१५७७९१७८२८}$$

लब्धि = ५११०, शेष राशि = १५६७०९८९२०

१५६७०९८९२० × १२ ÷ १५७७९१७८२८ = १८८०५१८७०४० ÷ १५७७९१७८२८

लब्धि = ११ राशि: , शेषम् = १४४८०९०९३२

१४४८२९२९३२ × ३० ÷ १५७७९१७८२८ = ४३४४२७२७९६०/ १५७७९१७८२८

लब्धि = २७ अंश: , शेषम् = ८३८९४६६०४

८३८९४६६०४ × ६०/ १५७७९१७८२८ = ५०३३६७९६२४०/ १५७७९१७८२८

लब्धि = ३१ कला, शेषं = १४२१३४३५७२

१४२१३४३५७२ × ६०/ १५७७९१७८२८ = ८५२८०६१४३२०/ १५७७९१७८२८

= ५४ विकला

११ । २७ । ३१ । ५४ राश्यादि एकदिवसीय मध्यमसूर्य होगा।

इसी प्रकार अब यहाँ मध्यम चन्द्रमा का साधन करते है -

अहर्गण - १८६६८३५

कल्पकुदिन संख्या – १५७७९१७८८१

चन्द्रमा का भगणमान – ५७७५३३३६

सूत्र से,

५७७५३३३६ × १८६६८३५ / १५७७९१७८२८ = $\frac{१०७८१५९४९०११५६०}{१५७७९१७८२८}$

लब्धि = ६८३२७, शेष = १५५७५७७८०४

१५५७५७७८०४ × १२ / १५७७९१७८२८ = १८६९०९३३६४८/ १५७७९१७८२८

लब्धि = ११ राशि, शेष – १३३३८३७५४०

१३३३८३७५४० × ३०/ १५७७९१७८२८ = ४००१५१२६२००/१५७७९१७८२८

लब्धि = २५ अंश, शेष- ५६७१७८५००

५६७१७८५०० × ६० / १५७७९१७८२८ = ३४०३०७१०००० / १५७७९१७८२८

लब्धि = २१ कला, शेषम् – ८९४४३५६१२

८९४४३५६१२ × ६०/ १५७७९१७८२८ = ५३६६६१३६७२०/ १५७७९१७८२८

= ३४ विकला

इस प्रकार से ११ । २५ । २१ । ३४ राश्यादि मध्यमचन्द्र मान आया।

मध्यम भौमसाधन -

अहर्गण - १८६६८३५, कल्पकुदिनसंख्या-१५७७९१७८२८, भौम का भगणमान – २२९६८३२

सूत्रेण,

२२९६८३२ × १८६६८३५ / १५७७९१७८२८ = $\frac{४२८७८०६३६६७२०}{१५७७९१७८२८}$

लब्धि = २७१७, शेष – ६०३६२८०४४

६०३६२८०४४ × १२ / १५७७९१७८२८ = ७२४३५३६५२८/ १५७७९१७८२८

लब्धि - ४ राशि, शेष– ९३१८६५२१६

९३१८६५२१६ × ३० / १५७७९१७८२८ = २७९५५९५६४८०/ १५७७९१७८२८

लब्धि - १७ अंश, शेष – ११३१३५३४०४

११३१३५३४०४ × ६० / १५७७९१७८२८ = ६७८८१२०४२४०/ १५७७९१७८२८

लब्धि - ४३ कला, शेष – ३०७३७६३६

३०७३७६३६ × ६० / १५७७९१७८२८ = १८४४२५८१६० / १५७७९१७८२८

= १ विकला

४।१७।४३।१ राश्यादिमान मध्यमभौम का हुआ।

मध्यम बुध शीघ्रोच्च का साधन -

अहर्गण - १८६६८३५, कल्पकुदिन संख्या – १५७७९१७८२८, बुधशीघ्रोच्चभगण- १७९३७०६०

सूत्रेण,

१७९३७०६० × १८६६८३५ / १५७७९१७८२८ = $\frac{३३४८५५३१४०५१००}{१५७७९१७८२८}$

लब्धि - २१२२१, शेष– ५३७१७७११२

५३७१७७११२ × १२ / १५७७९१७८२८ = ६४४६१२५३४४/ १५७७९१७८२८

लब्धि - ४ राशि, शेष – १३४४५४०३२

१३४४५४०३२ × ३० / १५७७९१७८२८ = ४०३३६२०९६०/ १५७७९१७८२८

लब्धि - २ अंश, शेष – ८७७७८५३०४

८७७७८५३०४ × ६० = ४६६७११८२४० / १५७७९१७८२८

लब्धि = २ कला, शेष – १५११२८२५८४

१५११२८२५८४ × ६० / १५७७९१७८२८ = ९०६७६९५५०४०/ १५७७९१७८२८

लब्धि - ५७ विकला

४।२।२।५७ राश्यादिमान मध्यमबुधशीघ्रोच्च का होगा।

मध्यमगुरू -

अहर्गण - १८६६८३५, कल्पकुदिनसंख्या - १५७७९१७८२८, गुरू भगणमान –३६४२२०

सूत्रेण,

३६४२२० × १८६६८३५ / १५७७९१७८२८ = ६७९९३८६४३७००/ १५७७९१७८२८

लब्धि - ४३०, शेष– १४३३९७७६६०

१४३३९७७६६० × १२ = १७२०७७३१९२० / १५७७९१७८२८

लब्धि - १० राशि, शेष – १४२८५५३६४०

१४२८५५३६४० × ३० = ४२८५६६०९२०० / १५७७९१७८२८

लब्धि - २७ अंशा, शेष– २५२८२७८४४

२५२८२७८४४ × ६० = १५१६९६७०६४०/ १५७७९१७८२८

लब्धि = ९ कला, शेष – ९६८४१०८८

९६८४१०१८८ × ६० = ५८१०४६११२८० / १५७७९१७८२८ = ३६ विकला

१०।२७।९।३६ राश्यादि मध्यमगुरु का मान आया।

मध्यम शुक्रशीघ्रोच्च –

अहर्गण-१८६६८३५, कल्पकुदिन संख्या– १५७७९१७८२८, शुक्रशीघ्रोच्च भगणसंख्या – ७०२२३७६।

सूत्रेण,

$$७०२२३७६ \times १८६६८३५ / १५७७९१७८२८ = \frac{१३१०९६१७२९९९६०}{१५७७९१७८२८}$$

लब्धि - ८३०८, शेष – २७५९८४९३६

२७५९८४९३६ × १२ = ३३११८१९२३२/ १५७०७९१७८२८ = लब्धि २ राशि

शेष – १४५९८३५७६

१४५९८३५७६ × ३० = ४३७९५०७२८०/ १५७७९१७८२८ = लब्धि २ अंश

शेष – १२२३६७१६२४

१२२३६७१६२४ × ६० = ७३४२०२९७४४० / १५७७९१७८२८ = लब्धि ४६ कला शेष – ८३६०७७३५२

८३६०७७३५२ × ६० = ५०१६४६४११२० / १५७७९१७८२८ = ३१ विकला

२।२।४६1३१ राश्यादिमान मध्यमशुक्रशीघ्रोच्च होगा।

मध्यमशनि का गणितीय साधन -

अहर्गण - १८६६८३५, कल्पकुदिन संख्या – १५७७९१७८२८, शनि भगण – १४६५६८

सूत्र के द्वारा,

१४६५६८ × १८६६८३५ = २७३६१८२७२२८० ÷ १५७७९१७८२८ = लब्धि १७३ शेष –

= ६३८४८८०३६।

६३८४८८०३६ × १२ = ७६६१८५६४३२ / १५७७९१७८२८ = लब्धि ४ राशि, शेष – १३५०१८५१२०।

१३५०१८५१२० × ३० = ४०५०५५५३६००/ १५७७९१७८२८ = लब्धि २५ अंश, शेष – १०५७६०७९००

१०५७६०७९०० × ६० = ६३४५६४७४००० / १५७७९१७८२८ = लब्धि ४० कला , शेष – ३३९७७६०८८०

३३९७६०८८० × ६० = २०३८५६५२८०० / १५७७९१७८२८ = लब्धि १२ विकला

४। २५। ४०। १२ राश्यादिमानम् मध्यमशनि आया।

1.3 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि सामान्यतया अहर्गण शब्द का अर्थ होता है – दिनों का समूह। संस्कृत में इसको इस प्रकार भी जान सकते है - अह्नां नाम दिनानां, गण: अर्थात् समूह: अयमेव दिनानां समूहो अहर्गण: कथ्यते। अर्थात् दिनों के समूह को 'अहर्गण' कहते है। अहर्गण के चार प्रकार हैं – सौर, सावन, चान्द्र और नाक्षत्र। इनमें ग्रहसाधन हेतु तथा गणितीय क्रियाकलापों के लिए सावनाऽहर्गण का प्रयोग किया जाता है।

अभीष्ट समय में ग्रहों की स्थिति क्या हैं? इसको जानने के लिए अहर्गण का साधन किया जाता है। अहर्गण साधन के तीन प्रकार हैं – 1. सिद्धान्त ग्रन्थानुसार 2. करण ग्रन्थों से तथा 3. तन्त्र ग्रन्थों के द्वारा। युगादि से जहाँ अहर्गण साधन किया जाता हैं, उसका नाम **तन्त्र** है। शकादि से अहर्गण साधन की विधि **करण** ग्रन्थों में बतलायी गयी हैं तथा सृष्ट्यादि या कल्पादि से जहाँ अहर्गण साधन का विवेचन प्राप्त होता है, उसे **सिद्धान्त** कहते हैं। अहर्गण के बिना हम गणित ज्योतिष में प्रवेश नहीं पा सकते। अत: ग्रहों का आनयन हेतु अहर्गण का ज्ञान परमावश्यक हैं।

1.4 पारिभाषिक शब्दावली

अहर्गण - दिनों का समूह।

सृष्ट्यादि – सृष्टि के आरम्भ से।

युगादि - युग के आरम्भ से।

शकादि – शक के आरम्भ से।

तन्त्र – जहाँ युगादि द्वारा अहर्गण साधन किया जाता है।

सिद्धान्त – सिद्ध: अन्ते यस्य स: सिद्धान्त:। जहाँ कल्पादि से अहर्गण साधन किया जाता हो।

1.5 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय/ कपिलेश्वर शास्त्री/माधवप्रसाद पुरोहित।

2. सिद्धान्तशिरोमणि – पं. सत्यदेव शर्मा।

3. ज्योतिषसिद्धान्तमंजूषा – प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय।

4. केतकीग्रहगणितम् – आचार्य वेंकट विरचित।

1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख

2. ख

3. ख

4. क

5. क

6. ग

7. घ

1.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अहर्गण साधन क्यों आवश्यक है? परिचय दीजिये।
2. ग्रहलाघव के अनुसार अहर्गण साधन कीजिये।
3. मकन्दीय अहर्गण का साधन कीजिये।
4. सिद्धान्तशिरोमणि में कथित अहर्गण का वर्णन कीजिये।
5. सूर्यसिद्धान्त में वर्णित अहर्गण का विवेचन कीजिये।
6. मध्यम ग्रह से आप क्या समझते है? उदाहरण सहित मध्यम ग्रह साधन कीजिये।

इकाई – 2 मन्दफल एवं शीघ्रफल

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 मन्दफल एवं शीघ्रफल परिचय व साधन

2.4 प्राचीन रीति से चन्द्रमा एवं सूर्य के स्पष्ट स्थान

2.5 सारांश

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई–506 चतुर्थ खण्ड की दूसरी इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – मन्दफल एवं शीघ्रफल। इससे पूर्व की ईकाइयों में आपने अहर्गण एवं मध्यम ग्रह का अध्ययन कर लिया है। अब आप स्पष्टग्रहानयन के क्रम मन्दफल एवं शीघ्रफल के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

स्पष्टग्रहानयन की प्रक्रिया में अहर्गण द्वारा मध्यम ग्रह लाकर उसमे मन्दफल एवं शीघ्रफल संस्कार किया जाता है। अत: मन्दफल एवं शीघ्रफल ग्रहस्पष्टीकरण के प्रमुख घटक है। सूर्य एवं चन्द्रमा की स्पष्टीकरण में केवल मन्दफल तथा अन्य भौमादि पंचतारा ग्रह में मन्दफल एवं शीघ्रफल दोनों की आवश्यकता होती है।

गणित ज्योतिष में स्पष्टग्रहों का आनयन प्रमुख आधार माना गया है तथा स्पष्टग्रह के साधन में मन्दफल एवं शीघ्रफल को मुख्य माना गया है। अत: आइए हम इस इकाई में मन्दफल एवं शीघ्रफल का ज्ञान प्राप्त करते है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- मन्दफल को परिभाषित कर सकेगें।
- मन्दफल की सिद्धि कर सकेगें।
- गणित ज्योतिष में मन्दफल एवं शीघ्रफल को बता सकेगें।
- ग्रहानयन में मन्दफल एवं शीघ्रफल की भूमिका का निरूपण कर सकेंगे।।

2.3 मन्दफल एवं शीघ्रफल परिचय व साधन

मानव पृथ्वी पर वास करते हैं। अत: वे ग्रहस्पष्टीकरण स्वस्थानाभिप्रायिक अर्थात् भू (भूकेन्द्रिक) सापेक्ष करते हैं। सूर्य और चन्द्रमा मन्दस्पष्ट होते ही स्पष्ट हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि वे केवल पृथ्वी की ही प्रदक्षिणा करते हैं, जिससे उनमें केवल एक ही संस्कार (मन्दफल) किया जाता है। और चूँकि उनका यह संस्कार भूकेन्द्रिक है, अत: इसके होते ही उनका भूकेन्द्रिक स्पष्टीकरण हो जाता है, पर पाँचों तारे सूर्य और पृथ्वी दोनों की ही प्रदक्षिणा करते हैं, जिससे इनमें दो संस्कार करने पड़ते हैं - 1. मन्दफल 2. शीघ्रफल।

भौमादि पंचताराग्रहों का मन्दफल संस्कार सूर्यकेन्द्रिक हैं अत: उनकी मन्दस्पष्ट स्थिति भूकेन्द्रिक न

होकर केवल सूर्यकेन्द्रिक है। इनकी स्थिति को भूकेन्द्रिक बनाने के लिये हमें इनकी मन्दस्पष्ट स्थिति में इनका शीघ्रफल नामक भूकेन्द्रिक संस्कार करना पड़ता है।

सूर्य और चन्द्र की कक्षाओं में एक बिन्दु पृथ्वी से दूरतम और दूसरा उससे निकटतम है। इससे यह स्पष्ट है कि पृथ्वी उक्त कक्षाओं के ठीक केन्द्र में न होकर उससे कुछ अलग हटकर है। वस्तुत: चन्द्र-सूर्य की कक्षायें अण्डाकार वृत्त हैं जिनकी एक नाभि में पृथ्वी है। इसी प्रकार भौमादि पंचताराओं की कक्षायें भी अण्डाकार वृत्त हैं। जिनकी एक नाभि में सूर्य है। इसका यह परिणाम होता है कि पृथ्वी और कक्षा केन्द्र इन दोनों स्थानों से युगपत् देखने पर भी ग्रह, यदि वह मन्दोच्च वा मन्दनीच पर न हो तो, स्वकक्षा में भिन्न स्थानों पर दिख पड़ता है। इन स्थानों के प्रतीयमान अन्तर का नाम **'मन्दफल'** है।

मध्यम ग्रह में से उसका मन्दोच्च घटाने से मन्द-केन्द्र आता है। मन्द-केन्द्र यदि मेषादि ६ राशियों तक हो तो मन्दफल ऋण होता है। क्योकि, ग्रह इस इशा में भूवासियों को स्वस्थान से पीछे दिखलाई पड़ता है और यदि केन्द्र तुलादि ६ से ऊपर पर १२ राशियों के भीतर हो तो वह स्वरूप स्थान से आगे दिखलाई पड़ता है जिससे मन्दफल धन होता है।

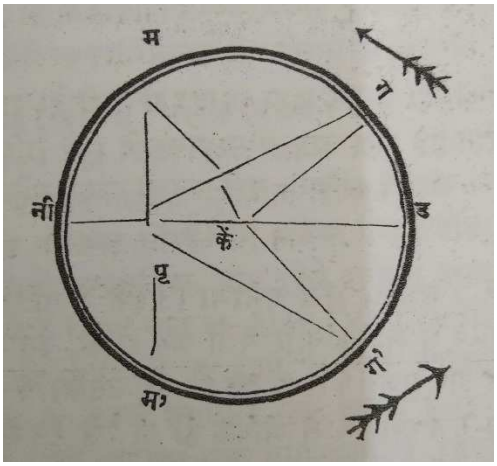

इस क्षेत्र में नी = मन्द नीच, पृ = पृथ्वी, के = कक्षा केन्द्र, उ = मन्दोच्च, ग = मन्दोच्च से ६ राशियों के भीतर ग्रह स्थान और ग = ६ से ऊपर पर १२ राशियों के भीतर ग्रह स्थान, पृगके = ग का मन्दफल ऋण और पृग कें = ग का मन्दफल धन है। ग्रह बाण की दिशा में घूम रहा है। पृ से देखने पर ग बाण की पूँछ की ओर परग' उसके मुख की ओर स्वस्थान से विचलित मालूम होगा, अत: ऋण मन्दफल को मध्यम ग्रह में घटाना और धन मन्दफल को उसमें जोड़ना चाहिये। नी और उपर मन्दफल का अभाव होगा, कारण कि पृ और कें दोनों स्थानों से ग्रह एक ही सीध में देख पड़ेगा। जब

ग्रह नी उ रेखापर लम्ब भूत पृ गके म बिन्दु पर पहुँचेगा तो उसका परम मन्दफल होगा। म बिन्दु पर मन्द केन्द्र कुछ अधिक ९० अंश रहता है जो चन्द्र-सूर्य के लिए सुखार्थ ९० अंश ही मान लिया जाता है।

सूर्यसिद्धान्त में मन्दफल का वर्णन इस प्रकार किया गया है –

तद्गुणभुजकोटिज्ये भगणांश विभाजिते।
तद्भुजज्याफलधनु: मान्दं लिप्तादिकं फलम्।।

अर्थात् स्फुट मन्दपरिधि को क्रम से भुजज्या और कोटिज्या से गुणा करके ३६० से (यदि स्फुट मन्द परिधि अंशों में हो) या १६०० से (यदि स्फुट मन्द परिधि कलाओं में हो) भाग देने पर लब्धि क्रम से भुजफल और कोटिफल होंगी। भुजफल जिस धनु की ज्या होगी उसे ही मन्दफल कहते हैं।
इसे सूत्रात्मक रूप में इस प्रकार भी समझ सकते हैं –

$$\textbf{भुज फल} = \frac{\text{स्फुट मन्द परिधि} \times \text{भुजज्या}}{३६०}$$

$$\textbf{कोटिफल} = \frac{\text{स्फुट मन्द परिधि} \times \text{कोटिज्या}}{३६०}$$

भुजफल जिस अंश की ज्या हो वही **मन्दफल** कहलाता है। उपर्युक्त समीकरणों में ३६० उसी समय होगा जब कि मन्द परिधि अंशों में हो। यदि मन्द परिधि कलाओं में हो तो ३६० की जगह २१६०० रखना होगा।

मन्दफल की उपपत्ति –

ग्रह के मध्य और स्पष्ट स्थानों का अन्तर क्या होता है यह जानने के लिए हमारे ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों ने यह कल्पना की थी कि मध्यम ग्रह तो सदैव समान गति से अनुलोम दिशा में पृथ्वी की परिक्रमा करता रहता है और स्पष्ट ग्रह मन्द परिधि पर जिसके मध्य में मध्यम ग्रह रहता है, विलोम दिशा में इस प्रकार चल रहा है कि जितने समय में मध्यम ग्रह अपनी कक्षा में (कक्षावृत्त में) पूरा परिक्रमा कर लेता है, उतने ही समय में स्पष्ट ग्रह मन्द परिधि पर अपनी परिक्रमा पूरा कर लेता है। मन्द परिधि पर परिक्रमा करते हुए स्पष्ट ग्रह कक्षावृत्त में जहाँ दिखलाई पड़ता है, उसी बिन्दु को स्पष्ट ग्रह का स्थान कहते है। इसे आप निम्न क्षेत्र द्वारा समझ सकते हैं –

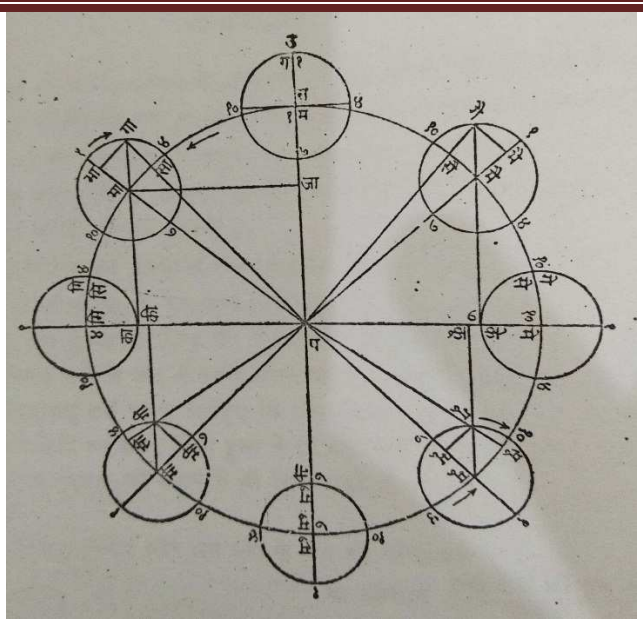

चित्र में प पृथ्वी का केन्द्र है। प को केन्द्र मानकर पम त्रिज्या से जो बड़ा वृत्त खींचा गया है वह कक्षावृत्त कहलाता है। इसी कक्षावृत्त पर मध्यम ग्रह अनुलोम दिशा में मध्यम गति से भ्रमण करता हुआ माना गया है। म, मा, मि, मी, मु, मू, मे, मै, मध्यम ग्रह के आठ स्थान हैं। म वह स्थान है जहाँ मध्यम और स्पष्ट ग्रहों का अन्तर शून्य होता है। अर्थात् इसी दिशा में ग्रह का मन्दोच्च होता है। कक्षा वृत्त में इसी जगह १ लिखा हुआ है और स भी लिखा हुआ है जिससे प्रकट होता है कि यह मध्यम और स्पष्ट ग्रह एक साथ होते हैं और इसी जगह से आरम्भ करके कक्षावृत्त अनुलोम दिशा में तीन-तीन राशि के अन्तर पर चार पदों में बाँटा गया है। इसीलिए पहले पद के अन्त में ४, दूसरे पद के अन्त में ७ और तीसरे पद के अन्त में १० के अंक लिखे गये हैं। म,मा मि इत्यादि मध्यम ग्रह के स्थानों को मध्यम मानकर ग्रह की मन्द परिधि के मानानुसार जो छोटे-छोटे वृत्त खींचे गये हैं वही स्फुट मन्द परिधि है। क्षेत्र को स्पष्ट करने के लिए स्फुट मन्द परिधि और कक्षावृत्त के विस्तार उसी अनुपात में नहीं दिखाये गये हैं, जिस अनुपात में यह प्रत्यक्ष देखे जाते हैं अथवा ग्रन्थों में दिये है। मन्द परिधि कुछ बढ़ाकर खींची गयी है। सूर्यसिद्धान्त के अनुसार इस स्फुट मन्द परिधियों के मान भी सर्वत्र समान नहीं होते। पम, पमा, पमि इत्यादि रेखायें मन्द परिधि के दूर वाले बिन्दु पर जहाँ पहुँचती है वहाँ भी मन्द परिधि पर १ के अंक लिखे हुए हैं। यहाँ से आरम्भ करके मन्द परिधि पर तीन-तीन राशि या ९०-९० अंश के अन्तर पर विलोम दिशा में ४,७,१० के अंक लिखे गये हैं। जिस समय मध्यम ग्रह म पर होता है। यही ग्रह के मन्दोच्च का स्थान है, इसलिए वहाँ उ भी लिखा हुआ है। जितने समय में मध्यम ग्रह कक्षावृत्त पर म से मा तक जाता है उतने समय में स्पष्ट ग्रह मंद परिधि पर

१ से गा तक जाता है, क्योंकि मध्यम ग्रह का कक्षावृत्त पर और स्पष्ट ग्रह का मंद वृत्त (मंद परिधि को मंदवृत्त भी कहते है) पर कोणीय वेग समान होता है, इसलिए मागा रेखा पम रेखा के जिसको नीचोच्च रेखा कहते हैं समानान्तर होती है। गा और प को मिलाने वाली रेखा को मंदकर्ण कहते हैं। यही पृथ्वी के मध्य से स्पष्ट ग्रह की दूरी होती है। यह मंदकर्ण कक्षावृत्त को सा बिन्दु पर काटता है, इसलिए स्पष्ट ग्रह कक्षावृत्त में सा बिन्दु पर ही देख पड़ता है। इसी बिन्दु को स्पष्ट ग्रह का स्थान कहते है। सा मा धनु अथवा सा प मा कोण को मंद फल कहते हैं। म मा धनु अथवा म प मा कोण को मन्द केन्द्र, म सा धनु अथवा म प सा को स्पष्ट केन्द्र कहते है, इसलिए स्पष्ट केन्द्र और मन्द केन्द्र का अन्तर '**मन्दफल**' कहलाता है।

अभ्यास प्रश्न

1. सूर्य एवं चन्द्रमा में कौन से संस्कार होते हैं?
   क. मन्दफल ख. शीघ्रफल ग. मन्दफल-शीघ्रफल घ. मन्दोच्च
2. भौमादि पंचताराग्रहों का मन्दफल संस्कार है?
   क. भूकेन्द्रिक ख. सूर्यकेन्द्रिक ग. चन्द्रकेन्द्रिक घ. मन्दकेन्द्रिक
3. मध्यम ग्रह में से उसका मन्दोच्च घटाने से क्या आता है?
   क. मन्द-केन्द्र ख. शीघ्रकेन्द्र ग. मन्दोच्च घ. शीघ्रोच्च
4. निम्न में मन्दफल का पर्याय है?
   क. कोटिफल ख. भुजफल ग. शीघ्रफल घ. केन्द्रफल
5. मन्द-केन्द्र यदि मेषादि ६ राशियों तक हो तो मन्दफल होता है।
   क. ऋण ख. धन ग. धन-ऋण घ. कोई नहीं
6. मन्दफल साधन क्यों किया जाता है?
   क. ग्रहस्पष्टीकरण के लिए ख. सूर्य-चन्द्र की स्थिति जानने के लिए ग. ग्रहों के वास्तविक व आभाषिक अन्तर जानने के लिए घ. उपयुक्त सभी।
7. प्राचीन रीति के अनुसार चन्द्रमा का परम मन्दफल कितना अंश होता है।
   क. ५ अंश ख.१० अंश ग. १५ अंश घ. २० अंश
8. ९ राशि में कितना अंश होता है?
   क. ३५० अंश ख. ३६० अंश ग. २७० अंश घ. १०८ अंश
9. सूर्य की सबसे छोटी गति कब होती है?
   क. १ दिसम्बर को ख. १ जुलाई को ग. २३ जून को घ. २१ सितम्बर को

शीघ्रफल –

शैघ्र्यं कोटिफलं केन्द्रे मकरादौ धनं स्मृतम्।
संशोध्यं तु त्रिजीवाप्त: कर्क्यादौ कोटिजं फलम्।।
तद्बाहुफलवर्गैक्यान्मूलं कर्णश्चलाभिध:।
त्रिज्याऽभ्यस्तं भुजफलं चलकर्णविभाजितम्।।
लब्धस्य चापं लिप्तादिफलं शैघ्रमिदं स्मृतम्।
एतदादौ कुजादीनां चतुर्थे चैव कर्मणि।।

अर्थात् यदि शीघ्र केन्द्र ९ राशि (२७०°) के उपर और ३ राशि (९०°) के भीतर हो तो कोटिफल को त्रिज्या में जोड़े, परन्तु यदि शीघ्रकेन्द्र ३ राशि के उपर और ९ राशि के भीतर हो तो कोटिफल को त्रिज्या में से घटाने पर जो लब्धि आती है, उसका वर्ग करके भुजफल के वर्ग में जोड़ देने पर और योगफल का वर्गमूल निकाले पर जो प्राप्त होता है वही शीघ्रकर्ण या चलकर्ण होता है। त्रिज्या को भुजफल से गुणा करके चलकर्ण से भाग दने पर लब्धि जिस धनु कोण की ज्या होगी वही शीघ्रफल कहलाता है। यह शीघ्रफल मंगल आदि पाँच ग्रहों के पहले और चौथे संस्कार के लिए काम में आता है।

मन्दफल और शीघ्रफल को इस प्रकार भी समझा जा सकता है –

मध्यमग्रह द्वारा स्पष्टग्रह लाने की रीति की उपपत्ति हमारे ज्योतिष शास्त्र के ग्रन्थों में परिलेख अर्थात् क्षेत्र द्वारा बतलायी गयी है। ग्रह के मध्यम स्थान और स्पष्ट स्थान में अन्तर पड़ने के कारणों से सम्बन्धी हमारे ज्योतिषियों की कल्पनाओं का ज्ञान होने के लिए उसे यहाँ लिखते हैं। पृथ्वी के मध्य को केन्द्र मानकर ग्रहकक्षावृत्त का निर्माण करते है। भूमध्य के बाहर एक बिन्दु को केन्द्र मानकर दूसरा समरूप वृत्त बनाते है। इस वृत्त का नाम 'प्रतिवृत्त' है। यही मध्यमग्रह का भ्रमणमार्ग माना जाता है। मध्यमग्रह कक्षावृत्त में जहाँ दिखाई देगा वहीं उसका स्पष्टस्थान होता है।

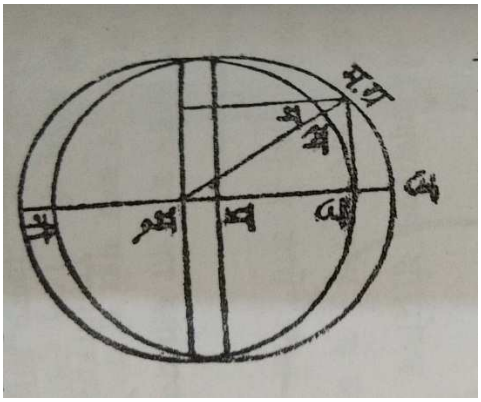

इस क्षेत्र में भूकेन्द्रवाला वृत्त कक्षावृत्त और प्र- केन्द्रवाला प्रतिवृत्त है। मग मध्यमग्रह है और तदनुसार कक्षावृत्त में भी म उसका स्थान है। प्रतिवृत्तीय म.ग्र से भू पर्यन्त जानेवाली रेखा में भूमि पर स्थिति द्रष्टा को ग्रह दिखाई देता है। इस रेखा को कर्ण कहते है। यह कर्ण कक्षावृत्त में स्पष्टस्थान में लगता है। कक्षावृत्त में यही स्पष्टग्रह दिखाई देता है। मध्यम और स्पष्ट ग्रह के अन्तर म.स्प को फलसंस्कार कहते हैं। इस फल का अनुभूत परमाधिक मान परमफल या अन्त्यफल कहलाता है। प्रतिवृत्त का केन्द्र भूकेन्द्र से अन्त्यफल की भुजज्या तुल्य अन्तर पर रहता है। इस फल को '**मन्दफल**' कहते है। मध्यमग्रह में इस मन्दफल का संस्कार करने से मन्दस्पष्ट होता ग्रह आता है। सूर्य और चन्द्रमा में इस एक ही फल का संस्कार करने से वे स्पष्ट हो जाते है, परन्तु अन्य पाँच ग्रह इस प्रकार लायी हुई मन्दस्पष्ट स्थिति के अनुसार भूस्थित द्रष्टा को नहीं दिखाई देते आधुनिक सिद्धान्तानुसार यह कहना चाहिये कि सूर्यस्थित द्रष्टा को उनकी यह स्थिति दिखाई देगी। उनमें एक और शीघ्रफल नामक संस्कार करने से जो स्थिति आती है उसके अनुसार वे पृथ्वी स्थित द्रष्टा को दिखाई देते हैं। शीघ्रफल लाने के लिए शीघ्रप्रतिवृत्त की कल्पना करनी पड़ती है और मन्दस्पष्ट ग्रह को मध्यमग्रह मानकर शीघ्रफल लाया जाता है। मन्दफल और शीघ्रफल लाने की क्रियाओं को क्रमश: मन्दकर्म और शीघ्रकर्म कहते हैं।

शीघ्रकर्म का स्वरूप यह है –

मन्दकर्म में जिसे कक्षावृत्त कहते हैं उसी को शीघ्रकर्म में शीघ्रप्रतिवृत्त मानते हैं और उसके केन्द्र से परमशीघ्रफलज्या तुल्य अन्तर पर केन्द्र मानकर दूसरा कक्षावृत्त बनाते हैं। इस शीघ्रकर्मसम्बन्धी कक्षावृत्त के मध्य में पृथ्वी को ही मानते हैं। शीघ्रप्रतिवृत्त में अपनी गति से भ्रमण करता हुआ मन्दस्पष्ट ग्रह इस शीघ्रकक्षावृत्त में जहाँ दिखाई देता है वहीं उसका शीघ्रस्पष्ट स्थान होता है। पृथ्वी स्थित द्रष्टा को ग्रह यहीं दिखाई देता है। कोई-कोई मन्दकक्षावृत्त को ही शीघ्रकक्षावृत्त मानकर उसके केन्द्र से शीघ्रान्त्यफलज्या तुल्य अन्तर पर कक्षावृत्ततुल्य ही शीघ्रप्रतिवृत्त बनाते हैं और मन्दकक्षावृत्त में प्रथम कृति द्वारा आये हुए मन्दस्पष्ट ग्रह को शीघ्रप्रतिवृत्त में ले जाने पर वह कक्षावृत्त में जहाँ दिखाई देता है वहीं उसका स्पष्ट स्थान मानते हैं। दोनों विधियों का परिणाम समान ही होता है।

उपयुक्त क्षेत्र से यह ज्ञात होता है कि प्रतिवृत्त में भ्रमण करनेवाले ग्रह का पृथ्वी से सर्वत्र समान अन्तर नहीं रहता। ग्रह जिस समय उ बिन्दु में अर्थात् उच्च में रहता है उस समय उसका अन्तर महत्तम और नी बिन्दु अर्थात् नीच में रहने पर लघुतम होता है। यह प्रकार ग्रहों की कक्षा दीर्घवृत्ताकार मानने जैसा ही हुआ। भू इस दीर्घवृत्त का एक केन्द्र है।

परमेश्वर का मन्दशीघ्रफल सम्बन्धी परिलेख सुबोध है। क्षेत्र निर्माण के लिए इसका अध्ययन किया जा सकता है –

मूल श्लोक -

त्रिज्याकृतं कुमध्यं कक्षावृत्तं भवेत्तु तच्छैघ्रयम्।
शीघ्रदिशि तस्य केन्द्रात् शीघ्रान्त्यफलान्तरे पुन: केन्द्रम्।।
कृत्वा विलिखेद् वृत्तं शीघ्रप्रतिमण्डलाख्यमुदितमिदम्।
इदमेव भवेन्मान्दे कक्षावृत्तं पुनस्तु तत्केन्द्रात्।।
केन्द्रं कृत्वा मन्दात्यफलान्तरे वृत्तमपि च मन्ददिशि।
कुर्यात् प्रतिमण्डलमिदमुदितं मान्दं शनीज्यभूपुत्रा:।।
मान्दप्रतिमण्डलगास्तत्कक्षायां तु यत्र लक्ष्यन्ते।
तत्र हि तेषां मन्दस्फुटा: प्रदिष्टास्तथैव शैघ्रे ते।।
प्रतिमण्डले स्थिता: स्युस्ते लक्ष्यन्ते पुनस्तु शैघ्राख्ये।
कक्षावृत्ते यस्मिन् भागे तत्र स्फुटग्रहास्ते स्यु:।।
मान्दं कक्षावृत्तं प्रथमं बुधशुक्रयो: कुमध्यं स्यात्।
तत्केन्द्रान्मन्द दिशि मन्दान्त्यफलान्तरे तु मध्यं स्यात्।।
मान्दप्रतिमण्डलस्य तस्मिन् यत्र स्थितो रविस्तत्र।
प्रतिमण्डलस्य मध्यं शैघ्रस्य तस्य मानमपि च गदितम्।।
शीघ्रस्ववृत्ततुल्यं तस्मिंचरत: सदा ज्ञशुक्रौ च।

अर्थात् पृथ्वी को मध्य और त्रिज्या को व्यासार्ध मानकर बनाया हुआ कक्षावृत्त ही शैघ्र (शीघ्रकर्मसम्बन्धी कक्षावृत्त) है।

इसके केन्द्र से शीघ्रदिशा में शीघ्रान्त्यफल तुल्य अन्तर पर केन्द्र मानकर पुन: एक वृत्त का निर्माण करें। इसे शीघ्रप्रतिमण्डल कहेंगे। मन्दकर्म में यही कक्षावृत्त होता है। इसके केन्द्र से मन्ददिशा मन्दान्त्यफल तुल्य अन्तर पर केन्द्र मानकर फिर एक वृत्त बनायें। इसे मन्दप्रतिवृत्त कहते हैं। शनि, गुरु और मंगल मन्दप्रतिवृत्त में गमन करते समय मन्दकक्षावृत्त में जहाँ दिखाई देते हैं वहीं उनके मन्दस्पष्ट बताये गये हैं (वे मन्दस्पष्ट शनि, गुरु और भौम के स्थान हैं)। इसी प्रकार शीघ्रप्रतिवृत्त में भी जानना चाहिये। वे शीघ्रकक्षावृत्त में जहाँ दिखाई देते हैं वहाँ उनका स्पष्टस्थान जानना चाहिये। बुध, शुक्र के मन्दकक्षावृत्तों का मध्य पृथ्वी है। उनके केन्द्रों से मन्दान्त्यफल तुल्य अन्तर पर मन्दप्रतिमण्डल का मध्य होता है। उसमें जहाँ सूर्य हो वहाँ शीघ्रप्रतिमण्डल का मध्य समझना चाहिये।

उसका (शीघ्रप्रतिवृत्त का) मान शीघ्रस्ववृत्त में तुल्य बताया है। बुध शुक्र सदैव उसी वृत्त में घूमते रहते हैं। नीचोच्चवृत्त नामक एक वृत्त के आधार पर फलसंस्कार की उपपत्ति की एक और रीति है। भास्कराचार्य जी ने सिद्धान्तशिरोमणि के छेद्यकाधिकार में उसके विषय में लिखा है –

कक्षास्थमध्यग्रहचिह्नतोऽथ वृत्तं लिखेदन्त्यफलज्यया तत्।
नीचोच्चसंज्ञं रचयेच्च रेखां कुमध्यतो मध्यखगोपरिस्थाम्॥
कुमध्यतो दूरतरे प्रदेशे रेखायुते तुंगमिह प्रकल्प्यम्।
नीचं तथासन्नतरेऽथ तिर्यङ् नीचोच्चमध्ये रचयेच्च रेखाम्॥
नीचोच्चवृत्ते भगणांकितेऽस्मिन् मान्दे विलोमं निजकेन्द्रगत्या॥
शैघ्रयेऽनुलोमं भ्रमति स्वतुंगादारभ्य मध्यद्युचरो हि यस्मात्।
अतो यथोक्तं मदुशीघ्रकेन्द्रं देयं निजोच्चाद् द्युचरस्तदग्रे॥

कक्षास्थित मध्यमग्रह को केन्द्र मानकर अन्त्यफलज्या तुल्य व्यासार्ध का एक वृत्त बनायें। इसे नीचोच्चवृत्त कहते हैं। भूमध्य और मध्यमग्रह में जाती हुई एक रेखा खीचींये। वह भूमध्य से अत्यधिक दूरी पर (नीचोच्च वृत्तपरिधि में) जहाँ लगे उसे उच्च और अत्यल्प दूरी पर जहाँ लगे उसे नीच जानना चाहिये। नीचोच्च के मध्य में एक तिर्यक् रेखा खीचें। नीचोच्चवृत्त की परिधि में राशि-अंशों को अंकित कर लें। मध्यमग्रह अपने-अपने उच्च से आरम्भ कर अपनी-अपनी मन्द या शीघ्र केन्द्रगति से मन्दनीचोच्चवृत्त में विलोम और शीघ्रनीचोच्चवृत्त में अनुलोम भ्रमण करते हैं, अत: उसके अनुसार अपने-अपने मन्दशीघ्र उच्च से मन्दशीघ्रकेन्द्र दो उसके आगे मन्द के आगे मन्दस्पष्ट और शीघ्र के आगे शीघ्रस्पष्ट ग्रह दिखाई देता है।

2.4 प्राचीन रीति से चन्द्रमा और सूर्य के स्पष्ट स्थान -

चन्द्रमा की सबसे कम गति वहाँ पर होती है जहाँ पर वह पृथ्वी से सबसे दूर होता है। उस स्थान को चन्द्रमा का '**मन्दोच्च**' कहते हैं। इसी प्रकार चन्द्रमा की गति जहाँ सबसे अधिक होती है, उसे '**मन्द नीच**' कहते है। मन्दोच्च से मन्दनीच तक आने में चन्द्रमा को आधे मन्द केन्द्रीय मास का समय लगता है। मन्दोच्च भी चन्द्रमा की दिशा में ही चलता है और उसके एक बार से दूसरी बार तक मन्दोच्च पर पहुँचने में जो समय लगता है उसे मन्दोच्च मास या भारतीय पद्धति में मन्दकेन्द्रीय मास कहते हैं। एक मन्दोच्च मास २७.५५४५५ दिनों का होता है। इसलिए आधे मन्दोच्च मास में १३.७७७२८ दिन हुए। मन्दोच्च पर चन्द्रमा की गति ११°। ६/३५ और मन्दनीच पर १५°। १४/३५ उपलब्ध की गई थी। अत: दोनों गतियों के अन्तर को १३.७७७ दिनों में विभक्त कर मन्दोच्च पर की चन्द्रगति में प्रतिदिन जोड़कर मन्दनीच तक की गति की गणना की जाती थी। इस प्रकार भी चन्द्रमा

की मध्यम गति १३°।१०।३५ ही प्राप्त थी। गणना करने से यह भी ज्ञात था कि मन्दोच्च मास का चौथाई अर्थात् ९० अंश तुल्य मन्दोच्च की दूरी पर चन्द्रमा का स्पष्ट स्थान मध्यम चन्द्रमा से ५ अंश पीछे और मन्दोच्च से २७० अंश की दूरी पर ५ अंश आगे रहता था, इसलिए इस ५ अंश को **चन्द्रमा का परम मन्दफल** कहा जाता था।

सूर्य की भी स्पष्ट स्थिति का निर्धारण चन्द्रमा के समान ही किया गया था। सूर्य की गति जहाँ सबसे कम होती है वह स्थान (मन्दोच्च) आकाश में अत्यन्त मन्दगति से चलता है। इसलिए उसके एक बार मन्दोच्च पर पहुँचकर दूसरी बार फिर उस पर जाने के मध्य का समय लगभग एक सौर वर्ष के तुल्य ही है। फलत: सहस्रों वर्षों तक सूर्य की सबसे कम और सबसे अधिक गति आकाश में एक ही स्थान पर देखी जाती है। ३० जून या १ जुलाई को सूर्य पृथ्वी से अधिकतम ऊँचाई पर और २९-३० दिसम्बर को सबसे कम दूरी पर होता है। इसलिए १ जुलाई को सूर्य की गति सबसे छोटी और ३१ दिसम्बर को सबसे बड़ी होती है। ३०-३१ सितम्बर को इसकी गति मध्यम गति के तुल्य होगी। इसलिए १ जुलाई से ३० दिसम्बर तक सूर्य की गति प्रतिदिन बढ़ती रहती है। ३१ दिसम्बर से ३० जून तक प्रतिदिन घटती ही जाती है। वैसे फिर घटते-घटते ३१ मार्च या १ अप्रैल को मध्यम गति के बराबर हो जाती है। फलत: ३१ सितम्बर को दृश्य सूर्य मध्यम सूर्य से लगभग २ अंश पीछे तथा १ अप्रैल को मध्यम सूर्य से २ अंश आगे रहता था। सूर्य की इस स्थिति का पता लगाने के लिए ठीक आधी रात के समय दक्षिणोत्तर वृत्त पर तारों की स्थिति में १८० अंश जोड़ना होता था। गणना का आधार चित्रा का चमकीला तारा था, जो क्रान्ति वृत्त से थोड़े ही अन्तर पर था। चित्रा से १८० अंश की दूरी पर आरम्भ बिन्दु माना गया था। क्योंकि उस समय वसन्तसम्पात इस आरम्भ बिन्दु से थोड़े ही आगे था। चीन में तो चित्रा को ही गणना का आरम्भ बिन्दु माना गया था।

सूर्य की मध्यम गति हमारे वर्ष दिन संख्या ३६५.२५६३ से ३६० में भाग देने पर ५९।८।१० ज्ञात थी। सूर्य की मन्दकेन्द्र गति भी इतनी ही थी। क्योंकि रवि मन्दोच्च की वार्षिक गति भी अत्यन्त स्वल्प है। इसलिए मध्यम और स्पष्ट सूर्य के सर्वाधिक अन्तर २ अंश को वर्ष के चौथाई दिन संख्या ९१.३ से भाग देकर मध्यम सूर्य के दैनिक ह्रास-वृद्धि की एक समान संख्या प्राप्त कर ली गई। अपने मन्दोच्च स्थान के मध्यम सूर्य में प्रतिदिन इस संख्या के एक गुने, दुगुने आदि को घटाते या जोड़े जाने पर स्पष्टसूर्य बना लिया जाता था। इस विधि को चन्द्रमा में प्रयुक्त करके चन्द्रमा की स्पष्ट स्थिति बतायी जा सकती हैं। मकरन्द सारिणी आदि में इस विधि का प्रयोग हुआ है और एक बड़ी मात्रा में भारतीय पंचांग आज भी इसी विधि से बनाये जाते है। इस विधि से बने पंचांगों की तिथि नक्षत्रादि में अधिक से अधिक एक घटी का अन्तर प्राचीन रीति से साधित स्पष्ट रवि चन्द्रमा से बनाई तिथियों

और नक्षत्रों में होता है।

2.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि मानव पृथ्वी पर वास करते हैं। अत: वे ग्रहस्पष्टीकरण स्वस्थानाभिप्रायिक अर्थात् भू (भूकेन्द्रिक) सापेक्ष करते हैं। सूर्य और चन्द्रमा मन्दस्पष्ट होते ही स्पष्ट हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि वे केवल पृथ्वी की ही प्रदक्षिणा करते हैं, जिससे उनमें केवल एक ही संस्कार (मन्दफल) किया जाता है। और चूँकि उनका यह संस्कार भूकेन्द्रिक है, अत: इसके होते ही उनका भूकेन्द्रिक स्पष्टीकरण हो जाता है, पर पाँचों तारे सूर्य और पृथ्वी दोनों की ही प्रदक्षिणा करते हैं, जिससे इनमें दो संस्कार करने पड़ते हैं - 1. मन्दफल 2. शीघ्रफल। भौमादि पंचताराग्रहों का मन्दफल संस्कार सूर्यकेन्द्रिक हैं अत: उनकी मन्दस्पष्ट स्थिति भूकेन्द्रिक न होकर केवल सूर्यकेन्द्रिक है। इनकी स्थिति को भूकेन्द्रिक बनाने के लिये हमें इनकी मन्दस्पष्ट स्थिति में इनका शीघ्रफल नामक भूकेन्द्रिक संस्कार करना पड़ता है। सूर्य और चन्द्र की कक्षाओं में एक बिन्दु पृथ्वी से दूरतम और दूसरा उससे निकटतम है। इससे यह स्पष्ट है कि पृथ्वी उक्त कक्षाओं के ठीक केन्द्र में न होकर उससे कुछ अलग हटकर है। वस्तुत: चन्द्र-सूर्य की कक्षायें अण्डाकार वृत्त हैं जिनकी एक नाभि में पृथ्वी है। इसी प्रकार भौमादि पंचताराओं की कक्षायें भी अण्डाकार वृत्त हैं। जिनकी एक नाभि में सूर्य है। इसका यह परिणाम होता है कि पृथ्वी और कक्षा केन्द्र इन दोनों स्थानों से युगपत् देखने पर भी ग्रह, यदि वह मन्दोच्च वा मन्दनीच पर न हो तो, स्वकक्षा में भिन्न स्थानों पर दिख पड़ता है। इन स्थानों के प्रतीयमान अन्तर का नाम **'मन्दफल'** है।

यदि शीघ्र केन्द्र ९ राशि (२७०°) के उपर और ३ राशि (९०°) के भीतर हो तो कोटिफल को त्रिज्या में जोड़े, परन्तु यदि शीघ्रकेन्द्र ३ राशि के उपर और ९ राशि के भीतर हो तो कोटिफल को त्रिज्या में से घटाने पर जो लब्धि आती है, उसका वर्ग करके भुजफल के वर्ग में जोड़ देने पर और योगफल का वर्गमूल निकाले पर जो प्राप्त होता है वही शीघ्रकर्ण या चलकर्ण होता है। त्रिज्या को भुजफल से गुणा करके चलकर्ण से भाग दने पर लब्धि जिस धनु कोण की ज्या होगी वही शीघ्रफल कहलाता है। यह शीघ्रफल मंगल आदि पाँच ग्रहों के पहले और चौथे संस्कार के लिए काम में आता है।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

स्थानाभिप्रायिक – स्वस्थान के सापेक्ष

भूकेन्द्रिक – पृथ्वी को केन्द्र मानकर की जाने वाली गणना

सूर्यकेन्द्रिक – सूर्य को केन्द्र मानकर की जाने वाली गणना

मन्दफल – भुजफल जिस अंश की ज्या हो वही **मन्दफल** कहलाता है।

शीघ्रफल – त्रिज्या को भुजफल से गुणा करके चलकर्ण से भाग दने पर लब्धि जिस धनु कोण की ज्या होगी वही शीघ्रफल कहलाता है।

आभाषिक – देखने में लगने की स्थिति

बिम्ब – वस्तु

वेधोपलब्ध – वेध-यन्त्रों द्वारा प्राप्त।

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सूर्यसिद्धान्त – महावीर प्रसाद श्रीवास्तव

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय/ कपिलेश्वर शास्त्री

भारतीय ज्योतिष – शंकरबालकृष्णदीक्षित

ग्रहगति का क्रमिक विकास – श्रीचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ. सत्यदेव शर्मा

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क
2. ख
3. क
4. ख
5. क
6. घ
7. क
8. ग
9. ख

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मन्दफल किसे कहते है?
2. प्राचीन रीति से सूर्य एवं चन्द्रमा की स्थिति कैसे बतलायी जाती थी?
3. मन्दफल साधन क्यों किया जाता है?
4. शीघ्रफल क्या है?

5. भौमादि पंचताराग्रहों में मन्दफल-शीघ्रफल संस्कार कैसे किया जाता है?

6. मन्दफल साधन की उपपत्ति बतलाइये।

इकाई - 3 उदयान्तर, देशान्तर एवं भुजान्तर संस्कार

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 उदयान्तर परिचय

3.3.1 उदयान्तर प्रयोजन

3.3.2 देशान्तर परिचय व साधन

3.4 भुजान्तर संस्कार विवेचन

3.5 सारांश

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई–506 चतुर्थ खण्ड की तीसरी इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है-उदयान्तर, देशान्तर एवं भुजान्तर। इससे पूर्व की ईकाइयों में आपने अहर्गण एवं मध्यमग्रह, मन्दफल तथा शीघ्रफल को जान लिया है। अब आप सिद्धान्त ज्योतिष में ग्रहस्पष्टीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत उदयान्तर, देशान्तर एवं भुजान्तर के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

उदयो: अन्तरं उदयान्तरम्। नाड़ीदेशीयस्वदेशीयोरन्तरं नाम उदयान्तरम्। लंकादेश से स्वदेशीय अन्तर का नाम देशान्तर है। इसी प्रकार भुजान्तर भुजयोरन्तरं नाम भुजान्तरम्।

ग्रहानयन में तथा गोल में उदयान्तर, देशान्तर एवं भुजान्तर को बतलाया गया है। आइए इस इकाई में हम इन सभी का अध्ययन कर जानने का प्रयास करते है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- उदयान्तर को बता सकेंगे।
- देशान्तर एवं भुजान्तर को परिभाषित कर सकेंगे।
- ग्रहानयन में उदयान्तर, देशान्तर एवं भुजान्तर की भूमिका को स्पष्ट कर पायेगें।
- गोलीय रीति से भी उदयान्तर, देशान्तर एवं भुजान्तर को स्पष्ट कर सकेंगे।

3.3 उदयान्तर परिचय

अहर्गण एवं अहर्गणोत्पन्न मध्यम ग्रह में मन्दफल एवं शीघ्रफल साधन के पश्चात् उदयान्तर, देशान्तर एवं भुजान्तर संस्कार ग्रहों के स्पष्टीकरण में किये जाने वाले संस्कार है। उदयो: अन्तरं नाम उदयान्तरम्। सामान्यतया दो उदय (नाड़ी एवं क्रान्ति वृत्त में स्थित कल्पितार्क एवं मध्यमार्क) का अन्तर उदयान्तर कहलाता है। 'उदयान्तर' भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विद आचार्य भास्कराचार्य जी का नवीन परिष्कृत अनुसन्धान है। उदयान्तर का उल्लेख भास्कराचार्य जी से पूर्व 'सिद्धान्तशेखर' के प्रणेता आचार्य श्रीपति ने की थी। किन्तु कालान्तर में स्पष्ट रूप से भास्कराचार्य जी ने इसका परिष्कार कर ग्रहसाधन में इसका उपयोग किया। उदयान्तर संस्कार सूर्य के क्रान्तिवृत्त तथा नाड़ीवृत्त में स्थिति के अन्तर के कारण उत्पन्न होता है।

सिद्धान्तशिरोमणि नामक सिद्धान्त ग्रन्थ में आचार्य का कथन है –

युक्तायनांशस्य तु मध्यमस्य भुक्तासवोऽर्कस्य निरक्षदेशे।
मेषादिभुक्तोदयसंयुता ये यश्चापनांशान्वितमध्यभानो:।।
लिप्तागणस्तद्विवरेण निघ्नी गतिर्ग्रहस्य द्युनिशासुभक्ता।

स्वर्णं ग्रहे चेदसवोऽधिकोना इदं ग्रहणामुदयान्तराख्यम्।।

अर्थात् मध्यमरवि को सावन बनाकर उसकी राशि के भुक्तांशों के निरक्ष देश पर भुक्त असु ज्ञात करके उनमें मेष से आरम्भ करके सूर्य की पिछली भुक्त राशियों के निरक्षोदय असु मान युक्त देने से मेष से लेकर सूर्य की भुक्त राशि अंश तक के उदय असु प्राप्त होंगे। फिर सायन रवि की कला बनावें तथा इन दोनों फलों के अन्तर को ग्रहगति से गुणा करके अहोरात्र असु २१६५९ से विभक्त करके लब्धि उदयान्तर कला फल को ग्रह में यदि कला से असु अधिक हो तो युक्त करे और यदि अल्प हो तो ऋण करें। अर्थात् रवि विषम पद में हो तो ऋण तथा सम पद में हो धन करे।

3.3.1 उदयान्तर का प्रयोजन

ज्योतिषशास्त्र की सार्थकता सिद्धि में अहर्गण द्वारा अनुपात सिद्ध लंकादेशीयक्षितिजासन्न ग्रह को स्वदेशीयक्षितिजगत करने हेतु मध्यम सावन से स्फुटसावन साधन की क्रिया में उदयान्तर संस्कार की आवश्यकता होती है। अब प्रश्न उठता है कि उदयान्तर किसका नाम है? तो इसका उत्तर है कि - उदययोरन्तरमुदयान्तरम्। अर्थात् नाड़ीवृत्तीय कल्पितार्क एवं क्रान्तिवृत्तीय मध्यमार्कोदयान्तर का नाम उदयान्तर है। इसी प्रकार गोलीय रीति के अनुसार विषुवांश और भुजांश का अन्तर और मध्यम और स्फुट सावन का अन्तर का नाम भी **'उदयान्तर'** है।

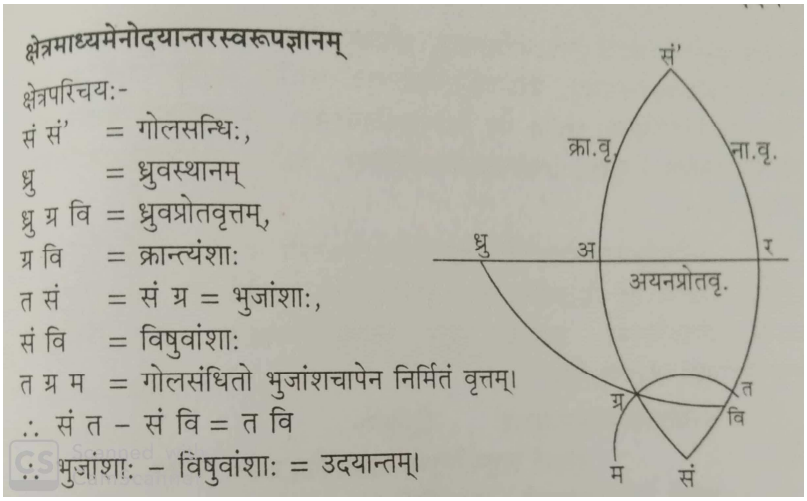

क्षेत्र द्वारा उदयान्तर बोध

उदयान्तर का सूत्र –

$$\pm \frac{(\text{रवि निरक्षोदयासु} - \text{रविउदय कला}) \times \text{ग्रह की दैनिक गति}}{२१६५९}$$

उदयान्तर की उपपत्ति –

अहर्गण से उत्पन्न ग्रह मध्यम सावन मान से लिया जाता है जो स्फुट सावनमान से चलता है, अत: यहाँ अन्तर उत्पन्न होता है। रवि की मध्यम गति की कला तुल्य असु को नाक्षत्र काल में युक्त करने से ६० घटी होता है। ६०/५९/८ यह मध्यम सूर्य सावन है। नाक्षत्र दिन २१६०० असु तुल्य होता है, (२३ घं. ५६ मिनट) और सावन दिन २४ घण्टे का होता है जो २१६५९असु तुल्य होता है। अत: इनका अन्तर ५९ असु लगभग (४ मिनट) होता है। सूर्य की मध्यम सावन दिनगति ५९१८ कलादि के तुल्य होती है जो ६० घटी में होती है। इस प्रकार प्रतिदिन गति में इतना अन्तर पड़ने से प्रतिमास राशि उदय अन्य समय पर होता है। उतना अन्तर अहर्गण से साधित करने से मध्यम ग्रह करने में नहीं आता जिससे सूर्योदयकालिक ग्रह प्राप्त नहीं होते, कभी सूर्योदय से कुछ आगे अथवा कभी कुछ पीछे ग्रह में अन्तर होता है। इसलिए आचार्य ने कहा है कि –

''दशशिर: पुरि मध्यम भास्करे क्षितिजसन्निधिगे सति मध्यम:।।''

अब स्फुट और मध्यम अहर्गण से प्राप्त ग्रह में अन्तर का आनयन बताते हैं। मेष से आरम्भ करके सूर्य जो राशियाँ भुक्त करता है उनके उदय असु का योग कर लेते हैं। उस असुवात्मक काल में दिनात्मक अहर्गण उत्पन्न होता है। फिर मेषादि से भुक्त कला तुल्य अन्तर ज्ञात करते हैं। इन असु और कला में जितना असु अन्तर होता है उतना ही असु अन्तर अहर्गण में पड़ता है। यदि अहोरात्र असु में इतनी गति प्राप्त होती है तो उन अन्तर असु में कितनी होगी? प्राप्तफल ग्रह में असु अधिक होने पर योग करते है अन्यथा ऋण करते हैं।

हमने ग्रह की स्थिति में सूर्यस्पष्ट तथा विषुवांश के अन्तर से उत्पन्न संस्कार को भुजान्तर के नाम से किया है। दूसरा यह संस्कार उदयान्तर के नाम से किया जाता है। यह संस्कार नाड़ीवृत्त तथा क्रान्तिवृत्त तिर्यक् स्थिति के कारण उत्पन्न होता है। श्रीपति तथा भास्कराचार्य के परवर्ती आचार्यों ने इस संस्कार को अपने ग्रन्थों में कहा है।

उदयान्तर की अन्य प्रकार से व्याख्या –

चेत् स्वोदयै: स्फुटरवेरसव: कृतास्ते
विश्लेषिताश्च यदि मध्यरवे: कलाभि:।
बाह्वन्तराख्यमुदयान्तरकं चराख्यं
कर्मत्रयं विहितमौदयिके तदा स्यात्।।

अर्थात् यदि हम स्फुट रवि के स्वस्थान के स्वोदय मान असु प्राप्त करने के लिए मेषादि से सावन स्फुट रवि के भुक्तासुओं का योग करें और उनका अन्तर मध्यम सूर्य कला से करके उनके अन्तर को

ग्रहभुक्ति (गति) से गुणा करके अहोरात्र असु से विभक्त करें। ये फल यदि अधिक हो तो ग्रह में युक्त करे अन्यथा ऋण करे। इस संस्कारसहित भुजान्तर, उदयान्तर तथा चरान्तर तीनों कर्मों से युक्त स्पष्ट ग्रह प्राप्त होता है।

विशेष – हम मध्यम सावन की अहर्गण की गणना करते हैं स्फुट सावन अहर्गण की नहीं करते। जब हम यह कहते हैं कि मध्यम सूर्योदय तक अमुक अहर्गण दिवस गत हो चुके हैं उस समय तक वास्तव में अमुक अहर्गण से कुछ अधिक भिन्न तुल्य समय व्यतीत हो चुका होता है जो स्फुट सावन अहर्गण होता है। इस 'अधिक भिन्न' संख्या के मान तुल्य यह उदयान्तर संस्कार किया जाता है।

और भी –

अहर्गणो मध्यमसावनेन कृतश्चलत्वात् स्फुटसावनस्य।
तदुत्थखेटा उदयान्तराख्यकर्मोद्भवेनोनयुता: फलेन।।
लंकोदये स्युर्न कृतास्तथाद्यैर्यतोऽन्तरं तच्चलमल्पकं च।।

जो अहर्गण साधन किया जाता है वह मध्यम मानीय सावन अहर्गण होता है क्योंकि स्फुट सावन दिन चलायमान होते हैं। अत: उनको अनुपात विधि के द्वारा साधित (स्फुट) नहीं कर सकते। युगारम्भ से वर्तमान वर्षादि के पूर्व तक जो अहर्गण के मध्यम सावन दिन हैं वे स्फुट सावन होते हैं, किन्तु वर्तमान रवि वर्षादि के आगे के जितने सावन दिन हैं वे स्फुट नहीं होते। अत: मध्यम सावन अहर्गण से उत्पन्न साधित ग्रहों में मध्यम तथा स्पष्ट सावन दिनों के अन्तर से प्राप्त (साधित) ग्रहों की अल्प चाल ऊन युक्त करने से वे लंका पर सूर्योदय कालिक प्राप्त होते हैं। लंका पर सूर्य मध्यम होता है।

उदयान्तरकर्म –

मध्यार्कभुक्ता असवो निरक्षे ये ये च मध्यार्ककलासमाना:।
तदन्तरं यत् स्फुटमध्ययोस्तद्द्युपिण्डयो: स्याद्विवरं गतिघ्नम्।।
हृतं द्युरात्रासुभिराप्तलिप्ताहीना ग्रहाश्चेदसवोऽल्पका: स्यु:।
तदन्यथाढयास्तु निजोदयैश्चेत् भुक्तासुपूर्वं विहितं तदानीम्।।
कृतं तथा स्याच्चरकर्ममिश्रं कर्म ग्रहाणामुदयान्तराख्यम्।।

अर्थात् सायन सूर्य के मेषादि से आरम्भ राश्यादि के भुक्त असुओं के निरक्षोदय मानों १६७०, १७९५, १९३५ आदि का योग करके उनमें सूर्य की वर्तमान राशि के भुक्त अंशादि को उस राशि के उदयमानों से गुणा करके ३० से विभक्त करके प्राप्तफल को युक्त करने से मध्यम सूर्य के भुक्त असु होते हैं। नक्षत्र दिनान्त मान के पश्चात् इतने असु पश्चात् लंका में मध्यमसूर्योदय होता है और इसी सूर्योदयकालिक ग्रहों का साधन किया जाता है तथा अहर्गण आनयन के सिद्धान्त से साधित अहर्गण

मध्यम सूर्य कला तुल्य असुकाल तक के नक्षत्र दिनान्त के आगे तक का होता है। अत: असु तथा कला मानों में जितना अन्तर होता है उतना सूर्योदय में अन्तर होता है। अत: इसको उदयान्तर काल कर्म कहते हैं।

इन उदयान्तर असुओं को ग्रहगति से गुणा करके सूर्य के सावन अहोरात्र असु २१६५९ से विभक्त करने से प्राप्त लब्धि कला को ग्रह में यदि कला से असु अल्प हो तो ऋण करे तथा अधिक हो तो धन करे। इस प्रकार करने से ग्रह निरक्ष देश में स्पष्ट होते हैं। यदि स्वदेश के लिए अर्थात् निरक्ष देश के अनन्तर किसी अन्य स्थान के ग्रह स्पष्ट करें तो वे स्वदेश के राशि उदयमानों द्वारा पूर्ववत करें तथा इस प्रकार क्रिया करने से प्राप्त ग्रह स्पष्ट चर कर्म युक्त ही प्राप्त होते हैं स्पष्ट सूर्य के लिए भुक्त असु, स्वोदय असु लिए गये हैं तथा पूर्वोक्त कर्म किये गये हैं तो वह सूर्य (ग्रह) स्पष्ट उदयान्तर, भुजान्तर तथा चर कर्म तीनों कर्मों से युक्त होता है।

उदयान्तर कर्म जो यहाँ कहा गया है वह यदि नहीं किया जावे तो जितना उसका अन्तर एक पाद के मध्य में पड़ता है वह एक पाद अन्त में विपरीत अल्प होकर शून्य हो जाता है अर्थात् वर्ष के एक चरण अर्थात् ३ माह के अन्त में घटते-घटते शून्य हो जाता है। यह ३ मास (एक पाद) के मध्य तक बढ़कर परम हो जाता है तथा उसके पश्चात् घटते हुए ३ मास के अन्त में पुन: शून्य हो जाता है। क्योंकि सूर्य एक मास में एक राशि चलता है अत: तीन मास में तीन उदित राशियों के उदय असुमानों का योग १६७० + १७९५ + १९३५ = ५४०० होता है तथा तीन राशियों की उदयकला ३ × ६० × ३० = ५४०० होती है। अत: प्रत्येक पदान्त में उदयान्तर काल शून्य हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न –

1. उदययोरन्तरम् नाम किम ?

   क. भुजान्तर ख. उदयान्तर ग. देशान्तर घ. क्रान्ति

2. भुजांश एवं विषुवांश का अन्तर क्या होता है?

   क. स्पष्ट ग्रह ख. मध्यम ग्रह ग. उदयान्तर घ. चर

3. नाक्षत्र दिन कितना असु तुल्य होता है?

   क. ६० असु ख. २१६०० असु ग. ४३२००० घ. ५०० असु

4. उदयान्तर संस्कार की आवश्कता होती है?

   क. ग्रहसाधन में ख. मन्दफल साधन में ग. चर साधन में घ. कोई नहीं

5. उदयान्तर संस्कार का वर्णन भास्कराचार्य से पूर्व किसने किया था?

   क. श्रीपति ने ख. लगध ने ग. लल्ल ने घ. आर्यभट्ट ने

3.3.2 देशान्तर परिचय व साधन

गणित ज्योतिष के दृष्टिकोण से दो देशों के नियामक रेखांशों के अन्तर को 4 से गुणाकर प्राप्त घण्टा मिनट ही उन-उन दोनों देशों का देशान्तर कहलाता है। यह देशान्तर सदैव पूर्व में धन तथा पश्चिम में ऋण होता है, ऐसा जानना चाहिये। यदि दोनों देशों के नियामक रेखांश एक ही दिशा के (पूर्वी रेखांश अथवा पश्चिमी रेखांश) के होंगे तो प्राप्त अन्तर ही देशान्तर कहलायेगा। यदि दोनों देशों के नियामक रेखांश भिन्न दिशा में स्थित होंगे तो उनका योग करके 4 से गुणा करने पर प्राप्त घण्टा मिनटादि देशान्तर होगा।

जैसे भारत का नियामक रेखांश पूर्वदिशा में 82°/30 एवं अमेरिका का नियामक रेखांश पश्चिम दिशा में 75^0/00 है। अत: यहाँ पर 82^0/30 + 75^0/00 = 157^0/30 हुआ। 4 से गुणा करने पर 157^0/30 ×4 = 628 मि./ 120 सै. = 630 मिनट = 10 घं./30 मि. भारत अमेरिका दोनों देशों का देशान्तर सिद्ध हुआ। अमेरिका की घड़ियों में 10 घ./30 मि. जोड़ने पर भारत का स्टैण्डर्ड समय ज्ञात होगा। भारत के समय में 10 घ./ 30 मि. घटाने पर अमेरिका का समय ज्ञात होगा।

1 अंश = 4 मिनट के हिसाब से प्रत्येक देश के नियामक रेखांशों को 4 से गुणा कर जो घण्टा-मिनट सैकेण्ड प्राप्त हो, उतना ही ग्रीनविच स्थान की घड़ियों से समय का अन्तर प्राप्त किया जाता है। पूर्वी रेखांशों में यह अन्तर ग्रीनवीच से पहले का एवं पश्चिमी रेखांशों का समय ग्रीनविच से बाद का होता है। दो देशों के नियामक रेखांशों के अन्तर का 4 से गुणाकर प्राप्त घण्टे मिनटादि को सम्बन्धित देशों का **देशान्तर** कहते हैं। जैसे भारतवर्ष का पूर्वी नियामक रेखांश 82^0 -30 है एवं जापान का पूर्वी नियामक रेखांश 135^0/00 है। 135×4 = 540 मिनट = 4 घण्टे ग्रीनविच से आगे है तथा भारत का पूर्वी रेखांश 82^0-30 × 4 = 328 -120 =330 मिनट = 5 घण्टे 30 मिनट आगे है। ग्रीनविच से जापान का देशान्तर 9 घण्टे एवं भारत का ग्रीनविच से देशान्तर 5 घण्टे 30 मिनट है। 9 घण्टे -5 घ. – 30 मिनट = 3 घण्टे – 30 मिनट जापान और भारत का देशान्तर है। इसको इस प्रकार समझ सकते हैं। जापान का मानक रेखांश पूर्वी 135^0-00। भारत मानक रेखांश 82^0-30। दोनों का अन्तर 135 -82^0= 30। = 52^0/30 आया। इसे 4 से गुणा करने पर 52^0 -30 ×4= 208-120 =210 मिनट.= 3 घण्टे 30 मिनट जापान एवं भारत का देशान्तर है। भारत एवं जापान दोनों देशों के नियामक रेखांश पूर्वी है। अत: दो देशों के मानक रेखांश एक दिशा में होने से दो देशों के मानक रेखांशों के अन्तर को 4 से गुणा करके देशान्तर की जानकारी होती है। भिन्न दिशा के मानक रेखांशों के योग को 4 से गुणा करके प्राप्त घण्टा मिनटादि **दो देशों का देशान्तर** होता है। जैसे पेरु देश का पश्चिमी नियामक रेखांश 75° है। भारत का पूर्वी नियामक रेखांश 82-30 है। भिन्न दिशा में दो

देशोंका मानक रेखांशों का योग किया 75°+ 82°-30 = 157°-30 इसको 4 से गुणा करने पर 157° – 30 × 4 = 628 -120 = 630 मिनट = 10 घं. 30 मिनट पेरु तथा भारत के बीच देशान्तर सिद्ध हुआ। इसे इस प्रकार भी समझा जा सकता है। पेरु ग्रीनविच से पश्चिमी रेखांश $75^0 \times 4 = 300$ मिनट = 5 घण्टे एवं ग्रीनविच से भारत पूर्वी रेखांश 82°-30 = 5घं.-30 मि. दोनों का योग करके 5 + 5-30 = 10 घा. 30 मि. पेरु एवं भारत का देशान्तर होगा। जिस समय पेरु में घड़ियाँ प्रात: 6 बजायेंगी उस समय भारतीय यान्त्रिक घड़ियों में 10 घं. 30 मि. आगे अर्थात् शाम के 4 बजकर 30 मि. का समय होगा। दो देशों के अन्तर को देशान्तर कहते हैं।

सिद्धान्तशिरोमणि में कथित देशान्तर संस्कार –

येऽनेन लंकोदयकालिकास्ते देशान्तरेण स्वपुरोदये स्यु:।
देशान्तरं प्रागपरं तथान्यद्याम्योत्तरं तच्चरसंज्ञमुक्तम्।।

उदयान्तर कर्म के द्वारा जैसे ग्रह लंका में सूर्योदयकालिक होते हैं वैसे ही देशान्तर कर्म के द्वारा ग्रह स्वस्थान के क्षितिज पर सूर्योदयकालिक होते हैं। देशान्तर दो तरह का होता है एक पूर्वापर जिसको यहाँ देशान्तर कहा गया है तथा दूसरा याम्योत्तर होता है, यह चर संज्ञक होता है (इसका वर्णन आगे की इकाई में किया गया है।)

पूर्वापर देशान्तर –

यलंकोज्जयिनीपुरोपरि कुरुक्षेत्रादिदेशान् स्पृशत्।
सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुव:।।
आदौ प्रागुदयोऽपरत्रविषये पश्चाद्धि रेखोदयात्।
स्यात् तस्मात् क्रियते तदन्तरभवं खेटेष्वृणं स्वं फलम्।।

इसका अर्थ यह है कि जो लंका, उज्जयनि के उपर से होते हुए कुरुक्षेत्रादि देशों को स्पर्श करता हुआ सूत्र मेरू स्थान तक जाता है, उसको भुव की मध्य रेखा कहते हैं। इस रेखास्थ देशों में सूर्योदयास्त से पूर्व दिशा में स्थित देशों में सूर्य का उदय तथा अस्त पहले होता है तथा पश्चिम में स्थित देशों में बाद में होता है। इनके सूर्योदयास्तों का काल उनके, मध्य रेखा से अन्तर योजन स्पष्ट भूवेष्ट के अनुपात द्वारा ज्ञात कर लेते हैं कि यदि स्फुट परिधि योजन में ६० घटियाँ प्राप्त होती हैं तो मध्य रेखा तथा स्वस्थान के मध्य योजन अन्तर में कितनी होगी –

$$\frac{\text{६० × मध्य रेखा तथा स्वस्थान के मध्य}}{\text{स्फुट परिधि योजन}} = \text{प्राप्त कला फल}$$

यदि इष्ट स्थान पूर्व में हो ग्रह में ऋण तथा पश्चिम में हो तो धन संस्कार करना चाहिये। इस प्रकार उस

स्थान पर, मध्य रेखा पर सूर्योदय के पश्चात् सूर्योदयकालिक ग्रह होते हैं।

भूपरिधि से देशान्तर ज्ञान के लिए और भी कहा है –

यत्र रेखापुरे स्वाक्षतुल्य: पलस्तन्निजस्थानमध्यस्थितैर्योजनै:।
खेटभुक्तिर्हता स्पष्टभूवेष्टनेनोद्धृता प्रागृणं स्वं तु पश्चाद् ग्रहे।।

अर्थात् मध्य रेखा से स्वस्थान के अक्षांश पर जितने पल तुल्य योजन दूरी हो उतने देशान्तर योजन पल को ग्रहगतिकला से गुणा करके स्वदेशीय स्पष्टपरिधि से भाग देने से प्राप्त कलादिफल को मध्य रेखा देश से पूर्व में स्वस्थान स्थित हो तो घटाने पर तथा पश्चिम में हो तो जोड़ने पर स्वस्थान के मध्यम ग्रह होते है।

विशेष – स्फुट परिधि पर एक ही अक्षांश पर स्थित दो प्रदेशों के बीच की पूर्वापर दूरी को देशान्तर कहते हैं। देशान्तर योजन को ६० से गुणा करके स्पष्ट भूपरिधि से भाग देने पर घटी आदि देशान्तर समय होता है।

चन्द्रग्रहण में देशान्तर संस्कार –

प्राग्भूविभागे गणितोत्थकालादनन्तरं प्रग्रहणं विधो: स्यात्।
आदौ हि पश्चाद्विवरे तयोर्या भवन्ति देशान्तरनाडिकास्ता:।।
तद्घ्नं स्फुटं षष्टिहृतं कुवृत्तं भवन्ति देशान्तरयोजनानि।
घटीगुणा षष्टिहृता द्युभुक्ति: स्वर्णं ग्रहे चोक्तवदेव कार्यम्।।
अर्कोदयादूर्ध्वमधश्च ताभि: प्राच्यां प्रतीच्यां दिनपप्रवृत्ति:।
उर्ध्वं तथाधश्चरनाडिकाभी रवावुदग्दक्षिणगोलयाते।।

अर्थात् पूर्णग्रास चन्द्रग्रहण के दिन स्वस्थान में, यदि चन्द्रमा के मध्य रेखा स्थान पर गणितागत उन्मीलन काल के बाद (वेध सिद्ध) उन्मीलन दृश्य हो तो स्वस्थान मध्य रेखा देश से पूर्व में स्थित समझना चाहिये और यदि गणितागत काल से पहले ही उन्मीलन दृश्य हो तो स्वस्थान मध्य रेखा से पश्चिम में स्थित जानना चाहिये अर्थात् मध्य रेखा पर किसी पूर्ण ग्रास चन्द्रग्रहण के समय की गणित से गणना करना चाहिये। उसी चन्द्रग्रहण का स्पर्श काल स्वस्थान पर भी वेध से देखे यदि स्वस्थान पर चन्द्रग्रहण का स्पर्श काल स्वस्थान पर भी वेध से देखे यदि स्वस्थान पर चन्दग्रहण स्पर्श मध्य रेखा पर गणित द्वारा ज्ञात चन्द्रग्रहण स्पर्श से पूर्व में हो तो स्वस्थान मध्य रेखा से पश्चिम में स्थित होता है। (यदि उन्मीलन पहले हो तो पश्चिम में स्थित होता है।) इसके विपरीत होने पर पश्चिम में स्थित होता है। इन दोनों कालों का (स्वस्थान पर तथा मध्य रेखा दोनों पर स्पर्श या दोनों पर उन्मीलन काल का) अन्तर देशान्तर काल होता है।

नीचे भूगोल के आधे गोले के पृष्ठ का चित्र हैं जिसमें उत्तर गोल के सी, अ, स, सा स्थानों के अक्षांश एक ही हैं इसलिए इन चारों स्थानों की स्फुट परिधि भी एक ही है। इन स्थानों की उत्तर-दक्षिण रेखा क्रम से उ सी पी द, उ अ ल द, उ स प द और उ सा पा द हैं। यदि उ अ ल द रेखा पर अ अवन्ती (उज्जैन) और ल लंका के स्थान हों तो इसको भारतवर्ष की मध्य रेखा कहेंगे, जैसे आजकल ग्रीनविच से जाने वाली उत्तर दक्षिण रेखा यूरोप और अमेरिका वालों की भूमध्य रेखा कही जाती है। किसी स्थान की स्फुट परिधि का वह खण्ड जो उस स्थान की उत्तर दक्षिण रेखा और मध्य रेखा के बीच में पड़ जाता है **उस स्थान का देशान्तर (योजनों में) कहलाता है**, जैसे क्षेत्रानुसार स का देशान्तर सअ, सा का देशान्तर सा अ और सी का देशान्तर सीअ हुए। इसी तरह प का देशान्तर प ल, पा का देशान्तर पा ल और पी का देशान्तर पी ल हुए। चित्र से यह भी स्पष्ट है कि यद्यपि प, स एक ही उत्तर-दक्षिण रेखा पर है तथापि प, स के देशान्तर योजनों में समान नहीं है क्योंकि स की स्फुट परिधि प की स्फुट परिधि (भूपरिधि) से छोटी है। यदि इसी रेखा पर कोई स्थान क हो तो इसका देशान्तर क का (योजनों में) और भी छोटा होगा।

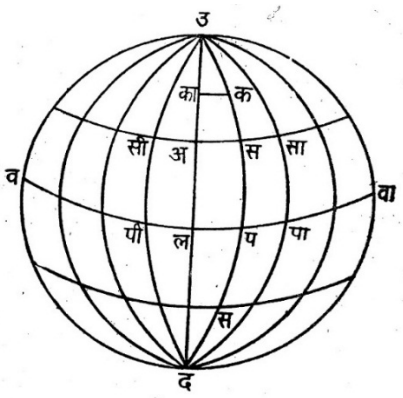

चित्र ११

3.4 भुजान्तर परिचय

भुजयोरन्तरं नाम भुजान्तरम्। अर्थात् मध्यम एवं स्पष्टग्रह भुज के अन्तर का नाम भुजान्तर है। सैद्धान्तिक दृष्टि से अनुपात द्वारा अहर्गण से साधित समस्त ग्रह लंकाक्षितिज में मध्यमार्क वा लंकार्धरात्रिकालिक होते हैं। उसी को स्पष्टोदय में स्फुटार्क करणार्थ तथा मध्यरात्रिकालिकस्फुटकरणार्थ भुजान्तर संस्कार करते है।

मूल श्लोक –

भानोः फलं गुणितमर्कयुतस्य राशेर्व्यक्षोदयेन खखनागमही १८०० विभक्तम्।

गत्या ग्रहस्य गुणितं द्युनिशासुभक्तं स्वर्णं ग्रहेऽर्कवदिदं तु भुजान्तराख्यम्।।

अर्थात् सूर्य के भुजफल को जिस राशि में सूर्य हो उस राशि के निरक्षोदय काल से गुणा करके एक राशि कला मान १८०० से विभक्त करने से प्राप्तफल को पुन: ग्रहगति से गुणा करके अहोरात्र असु २१६५९ से विभक्त करने से जो फल प्राप्त हो उसको उस ग्रह में सूर्य के भुजफल के धन ऋण के अनुसार धन-ऋण करना चाहिये।

सूत्र रूप में भुजान्तर संस्कार –

$$\pm \frac{\text{सू.भुजफल} \times \text{सूर्य स्थित राशि निरक्षोदय असु} \times \text{दैनिक ग्रहगति}}{१८०० \times २१६५९}$$

अब यहाँ भुजान्तर संस्कार करके सूर्योदय कालिक ग्रह को स्फुट सूर्योदय कालिक किया जाता है। मध्यम तथा स्फुट सूर्य का अन्तर सूर्य का भुजान्तर होता है। यहाँ सूर्य के मन्दफल को असु में बनाने के लिए अनुपात किया कि यदि एक राशि कला १८०० उदित होने में निरक्ष देश में इतने असु लगते हैं तो फल कला में कितने लगेंगे? लब्धि फल असु में होता है। फिर दूसरा अनुपात किया कि यदि अहोरात्र असु में इतनी ग्रह गतिकला होती है तो अभीष्ट मंद भुजफल कला असु में कितनी होगी? ये कला मध्य सूर्य से पूर्व स्फुट सूर्य होने पर ऋण तथा बाद में होने पर धन करना चाहिये।

सूर्यसिद्धान्तोक्त भुजान्तर संस्कार –

अर्कबाहुफलाभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता।
भचक्रकलिकाभिस्तु लिप्ता: कार्या ग्रहेऽर्कवत्।।

सूर्य के भुजफल (मन्दफल) को ग्रहगतिकला से गुणाकर गुणनफल को भचक्रकला (२१६०० कला) से भाग देने पर जो कलात्मक लब्धि हो उसे भुजान्तर संस्कार कहते हैं। उसका संस्कार अभीष्ट ग्रह में सूर्य मन्दफल के अनुसार करना चाहिये। अर्थात् सूर्यमन्दफल धन हो तो ग्रह में लब्धि जोड़ने से मन्दफल ऋण हो तो ग्रह से लब्धि को घटाने से अर्धरात्रिकालिक स्पष्ट ग्रह होता है।

जैसे मध्यमार्क एवं स्फुटार्क का अन्तर मन्दफल होता है, वैसे ही मध्यरात्रिकालिकस्फुटार्क एवं मध्यरात्रिकालिक ग्रह के अन्तर का नाम **भुजान्तर** है।

यहाँ इस प्रकार अनुपात बनता है कि यदि भचक्रकलासु में ग्रहगतिकला मिलता है तो मन्दफलकलाअसु में क्या? फल भुजान्तरकला के रूप में आता है।

सूत्र - $\frac{\text{ग्रहगतिकला} \times \text{मन्दफलकलासु}}{\text{भचक्रकलासु}} = \text{भुजान्तरकला।}$

अभ्यास प्रश्न – 2

1. दो देशों के नियामक रेखांशों के अन्तर को 4 से गुणाकर प्राप्त घण्टा मिनट को क्या कहते हैं?

   क. उदयान्तर ख. भुजान्तर ग. देशान्तर घ. चरान्तर

2. 1 अंश कितने समय के बराबर होता है?

   क. 1 मिनट ख. 2 मिनट ग. 3 मिनट घ. 4 मिनट

3. मध्यम एवं स्पष्टग्रह भुज के अन्तर का नाम क्या है?

   क. चर ख. भुजान्तर ग. देशान्तर घ. क्रान्ति

4. सूर्य किस वृत्त में भ्रमण करता है?

   क. क्रान्ति ख. नाड़ी ग. कदम्ब घ. दृगवृत्त

5. भचक्र कला का मान कितना होता है?

   क. ५०० ख.६० ग.२१६०० घ. १६००

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि अहर्गण एवं अहर्गणोत्पन्न मध्यम ग्रह में मन्दफल एवं शीघ्रफल साधन के पश्चात् उदयान्तर, देशान्तर एवं भुजान्तर संस्कार ग्रहों के स्पष्टीकरण में किये जाने वाले संस्कार है। उदयो: अन्तरं नाम उदयान्तरम्। सामान्यतया दो उदय (नाड़ी एवं क्रान्ति वृत्त में स्थित कल्पितार्क एवं मध्यमार्क) का अन्तर उदयान्तर कहलाता है। 'उदयान्तर' भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विद आचार्य भास्कराचार्य जी का नवीन परिष्कृत अनुसन्धान है। उदयान्तर का उल्लेख भास्कराचार्य जी से पूर्व 'सिद्धान्तशेखर' के प्रणेता आचार्य श्रीपति ने की थी। किन्तु कालान्तर में स्पष्ट रूप से भास्कराचार्य जी ने इसका परिष्कार कर ग्रहसाधन में इसका उपयोग किया। उदयान्तर संस्कार सूर्य के क्रान्तिवृत्त तथा नाड़ीवृत्त में स्थिति के अन्तर के कारण उत्पन्न होता है। ज्योतिषशास्त्र की सार्थकता सिद्धि में अहर्गण द्वारा अनुपात सिद्ध लंकादेशीयक्षितिजासन्न ग्रह को स्वदेशीयक्षितिजगत करने हेतु मध्यम सावन से स्फुटसावन साधन की क्रिया में उदयान्तर संस्कार की आवश्यकता होती है। अब प्रश्न उठता है कि उदयान्तर किसका नाम है? तो इसका उत्तर है कि - उदययोरन्तरमुदयान्तरम्। अर्थात् नाड़ीवृत्तीय कल्पितार्क एवं क्रान्तिवृत्तीय मध्यमार्कोदयान्तर का नाम उदयान्तर है। इसी प्रकार गोलीय रीति के अनुसार विषुवांश और भुजांश का अन्तर और मध्यम और स्फुट सावन का अन्तर का नाम भी **'उदयान्तर'** है।

गणित ज्योतिष के दृष्टिकोण से दो देशों के नियामक रेखांशों के अन्तर को 4 से गुणाकर प्राप्त घण्टा मिनट ही उन दोनों देशों का देशान्तर कहलाता है। यह देशान्तर सदैव पूर्व में धन तथा पश्चिम में ऋण होता है, ऐसा जानना चाहिये। यदि दोनों देशों के नियामक रेखांश एक ही दिशा के (पूर्वी रेखांश अथवा पश्चिमी रेखांश) के होंगे तो प्राप्त अन्तर ही देशान्तर कहलायेगा। यदि दोनों देशों के नियामक रेखांश भिन्न दिशा में स्थित होंगे तो उनका योग करके 4 से गुणा करने पर प्राप्त घण्टा मिनटादि देशान्तर होगा। भुजयोरन्तरं नाम भुजान्तरम्। अर्थात् मध्यम एवं स्पष्टग्रह भुज के अन्तर का नाम भुजान्तर है। सैद्धान्तिक दृष्टि से अनुपात द्वारा अहर्गण से साधित समस्त ग्रह लंकाक्षितिज में मध्यमार्क वा लंकार्धरात्रिकालिक होते हैं। उसी को स्पष्टोदय में स्फुटार्क करणार्थ तथा मध्यरात्रिकालिकस्फुटकरणार्थ भुजान्तर संस्कार करते है।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

देशान्तर – गणित ज्योतिष के दृष्टिकोण से दो देशों के नियामक रेखांशों के अन्तर को 4 से गुणाकर प्राप्त घण्टा मिनट ही उन दोनों देशों का देशान्तर कहलाता है।

उदयान्तर – अर्थात् नाड़ीवृत्तीय कल्पितार्क एवं क्रान्तिवृत्तीय मध्यमार्कोदयान्तर का नाम उदयान्तर है। इसी प्रकार विषुवांश और भुजांश का अन्तर और मध्यम और स्फुट सावन का अन्तर का नाम भी 'उदयान्तर' है।

भुजान्तर – भुजयोरन्तरं नाम भुजान्तरम्। अर्थात् मध्यम एवं स्पष्टग्रह भुज के अन्तर का नाम भुजान्तर है।

मध्मार्क – मध्यम सूर्य

स्फुटार्क – स्पष्ट सूर्य

नाड़ीवृत्त – ध्रुवस्थान से ९० अंश की त्रिज्या से निर्मित वृत्त का नाम नाड़ीवृत्त है।

क्रान्तिवृत्त – कदम्ब स्थान से ९० अंश की त्रिज्या से निर्मित वृत्त का नाम क्रान्तिवृत्त है।

लंकार्धरात्रिकालिक – लंका की अर्धरात्रि कालिक समय।

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सूर्यसिद्धान्त – महावीर प्रसाद श्रीवास्तव

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय/ कपिलेश्वर शास्त्री

भारतीय ज्योतिष – शंकरबालकृष्णदीक्षित

ग्रहगति का क्रमिक विकास – श्रीचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ. सत्यदेव शर्मा

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न -1 के उत्तर

1. ख
2. ग
3. ख
4. क
5. क

अभ्यास प्रश्न -2 के उत्तर

1. ग
2. घ
3. ख
4. क
5. ग

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उदयान्तर किसे कहते है? लिखिये।
2. उदयान्तर का महत्व प्रतिपादित करते हुए क्षेत्र द्वारा स्पष्ट कीजिये?
3. देशान्तर से आप क्या समझते है?
4. देशान्तर साधन कीजिये ?
5. भुजान्तर संस्कार क्या है?
6. भुजान्तर का महत्व प्रतिपादित करते हुए उसके साधन विधि बतलाइये।

इकाई - 4 क्रान्ति एवं चरान्तर विवेचन

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 क्रान्ति एवं चरान्तर परिचय

4.4 क्रान्ति एवं चर साधन

4.5 सारांश

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई–506 के चतुर्थ खण्ड की चौथी इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है - क्रान्ति एवं चरान्तर विवेचन। इससे पूर्व की ईकाइयों में आपने गणित ज्योतिष के प्रमुख विषय अहर्गण एवं मध्यमग्रह, मन्दफल, शीघ्रफल, उदयान्तर, देशान्तर एवं भुजान्तर आदि का अध्ययन कर लिया है। अब आप प्रस्तुत इकाई में क्रान्ति एवं चरान्तर के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

सूर्य की स्थिति जानने के लिए क्रान्ति का साधन किया जाता है तथा अहोरात्र वृत्त में स्थित चरान्तर का ज्ञान ग्रहसाधन हेतु होता है।

गणित ज्योतिष में क्रान्ति एवं चरान्तर का ज्ञान परमावश्यक है। अत: आइए इस इकाई में क्रान्ति एवं चरान्तर के बारे में जानने का प्रयास करते है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- क्रान्ति को बता सकेगें।
- क्रान्ति साधन में समर्थ होगें।
- चरान्तर का विवेचन कर सकेंगे।
- ग्रहस्पष्टीकरण में क्रान्ति एवं चरान्तर के महत्व को समझा सकेंगे।

4.3 क्रान्ति एवं चर परिचय

सैद्धान्तिक दृष्टि से क्रान्ति का सम्बन्ध सूर्य से है। नाड़ीवृत्त से सूर्य कितना उत्तर या दक्षिण भाग में स्थित है? इस ज्ञान को जानने या समझने का नाम 'क्रान्ति' है। हमारे ग्रन्थों में सूर्य की परमक्रान्ति २४ अंश मानी जाती है। क्रान्तिवृत्त का इतना तिर्यकत्व शकपूर्व २४०० वर्ष के लगभग था। वह क्रमश: न्यून होता जा रहा है। शक १८१८ के आरम्भ का उसका मान २३/२७/१० है अर्थात् सम्प्रति हमारे ग्रन्थों की क्रान्ति में ३२ अंश ५० कला अशुद्धि है। शक ४०० के आसन्न तिर्यकत्व लगभग २३/३९ था।

भूमध्यरेखा (विषुवद् रेखा) से जिस प्रकार पृथिवी उत्तर-दक्षिण गोलार्द्ध में विभाजित है। आकाश में विषुवद् रेखा से ठीक ऊपर विषुवद् वृत्त (नाड़ी वृत्त) की कल्पना की गई है। नाड़ी वृत्त पर सूर्य सायन मेषादि एवं सायन तुलादि पर आता है। सायन मेषराशि में प्रवेश के समय (21 मार्च) रहता है। नाडी

वृत्त पर क्रान्ति शून्य रहती है। नाडीवृत्त से सूर्य उत्तर गोल में प्रवेश करके निरन्तर उत्तर की ओर बढ़ता रहता है। नाडीवृत्त को अतिक्रान्तकर जितना उत्तर दिशा में सूर्य हटेगा। उतनी ही क्रान्ति होगी। सायन मेष प्रवेश काल से सायन मिथुनराशि के अन्त (21 मार्च से 21 जून तक) सूर्य उत्तर दिशा में बढ़ता जायगा। नाडी वृत्त से जितने अंश-कला दूर होगा। तत्तुल्य ही क्रान्ति होगी। 22 जून से (सायन कर्क प्रवेश काल से) उत्तर गोल में रहते हुए भी सूर्य लौटते हुए दक्षिण दिशा की ओर अग्रसर हो जाता है। सायन कर्क से सायन कन्या राशि पर्यन्त रवि की क्रान्ति अपचीयमान होते हुए शून्य पर आ जाती है। 22 सितम्बर के बाद 23 सितम्बर से अर्थात् सायन तुलाराशि प्रवेश से सूर्य दक्षिण गोलार्द्ध में प्रवेश करके निरन्तर दक्षिण दिशा की ओर अग्रसर होता है। 23 सितम्बर से दक्षिणा क्रान्ति प्रारम्भ होकर धनु राशि के अन्त (21 दिसम्बर) तक निरन्तर दक्षिणा क्रान्ति सर्वाधिक होती है सायन मकरराशिप्रवेश अर्थात् 22 दिसम्बर से मीन राशि के अन्त तक यानि 20 मार्च तक दक्षिणगोलस्थसूर्य की क्रान्ति अपचीयमान होकर शून्यतक आजाती है। 21 मार्च से पुनः सूर्य की क्रान्ति शून्य होकर उत्तरगोलार्द्ध की ओर सूर्य बढ़ता है। वहाँ से सूर्य की उत्तराक्रान्ति पुनः प्रारम्भ हो जाती है। इस प्रकार 21 मार्च से 21 जून अधिकतम उत्तराक्रान्ति 22 जून से 22 सितम्बर तक अपचीयमान उत्तराक्रान्ति एवं 23 सितम्बर से दक्षिणाक्रान्ति का प्रारम्भ हो जाता है। क्रान्ति भेद से, अक्षांश की तरह सूर्योदय काल भी प्रभावित होता है। अक्षांश-क्रान्ति एक दिशा में होने से सूर्योदय जल्दी एवं दिनमान में वृद्धि तथा भिन्न दिशा में अक्षांश क्रान्ति होने से देर से सूर्योदय एवं दिनमान में ह्रास होता है।

जिस प्रकार भूमध्य रेखा से विभाजित भूगोल उत्तर-दक्षिण भेद से दो भागों में विभाजित हो जाता है। ठीक उसी प्रकार आकाश (खगोल) भी नाड़ीवृत्त से उत्तर, दक्षिण दिशा मे दो भागों में विभाजित है। भूमि पर उत्तर-दक्षिण दिशा के भेद से अक्षांशों की जानकारी पूर्व में दी जा चुकी है। आप अक्षांशों से पूर्णपरिचित हो चुके हैं। उत्तरी-दक्षिणी गोलार्द्धों में सूर्य की स्थिति के द्वारा आपलोग क्रान्ति से भली-भाँति परिचित हो सकेंगे।

मेषादि 12 राशियों में रहते हुए दीवाल घड़ी के पेण्डुलम की तरह सूर्य मेष से कन्याराशि तक 6 राशियों में नाडी वृत्त (विषुवद्वृत्त) से निरन्तर उत्तर की ओर बढ़कर पुनः नाडीवृत्त पर लौटता है। यह स्थिति 21 मार्च से 22 सितम्बर तक रहती है। 23 सितम्बर से, मीन राशि पर्यन्त सूर्य क्रमशः दक्षिण दिशा में बढ़ता हुआ पुनः लौट कर 21 मार्च को नाड़ी वृत्त पर आ जाता है।

पुनरावृत्ति के रूप में आप इसे इस प्रकार भी समझ सकते हैं-

सायन मेष प्रवेश (21 मार्च के लगभग) काल पर (नाड़ी वृत्त पर) सूर्य की क्रान्ति शून्य होती है। 21

मार्च से सायन मेष, वृष, मिथुन राशि में सूर्य निरन्तर उत्तर दिशा में बढ़ता हुआ नाडी वृत्त से उत्तर की ओर जितना हटता है, उतनी ही उत्तराक्रान्ति बढ़ती रहती है। सायनमिथुनराशि के अन्त (21 जून के लगभग) में सूर्य अधिकतम $32^0/27$। के लगभग नाडीवृत से उत्तर जाता है। पुनः सायन कर्क प्रवेश काल (22 जून) से वापिस लौटकर धीरे धीरे 22 सितम्बर (सायन कन्या राशि की समाप्ति) तक नाड़ी वृत्त पर आ जाता है। तुलाराशि के प्रारम्भ (23 सितम्बर) को क्रान्ति शून्य होकर सूर्य दक्षिणी गोलार्द्ध में प्रवेश कर जाता है। उत्तर की भांति सायन-तुला-वृश्चिक एवं धनुराशि में (23 सितबर से 21 दिसम्बर तक) सूर्य की दक्षिणाक्रान्ति अधिकतम $23^0/27$। तक होती है। सायन मकर प्रवेश से सायन कन्यान्त तक (22 दिसम्बर से 20 मार्च तक) दक्षिणाक्रान्ति घटती रहती है। सायन तुलाप्रवेश (21 मार्च) को क्रान्ति पुनः शून्य हो जाती है। पूरे वर्ष यह क्रम चलता ही रहता है -

चित्र सं.- 4

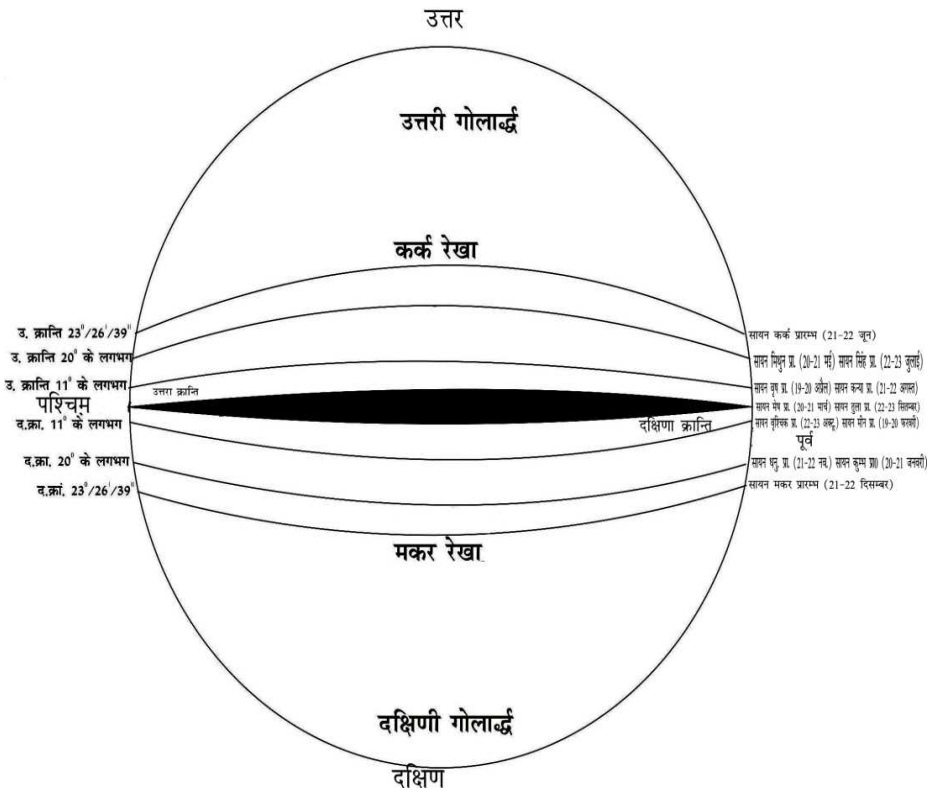

आप चित्र के माध्यम से क्रान्ति का बोध भली प्रकार कर सकते हैं। खगोल के मध्य पूर्व-पश्चिम में गया हुआ विषुवद् वृत्त आकाश मण्डल को उत्तरी-दक्षिणी गोलार्द्ध के रूप में दो भागों में विभाजित करता है। नाडीवृत्त (विषुवद् वृत्त) पर सूर्य प्रतिवर्ष सायन मेषएवं सायनतुलाराशि प्रवेश के समय (21-22मार्च एवं 22-23 सितम्बर को) आता है। नाडीवृत्त पर सूर्य की क्रान्ति 0 शून्य रहती है। 21 मार्च से प्रतिदिन उत्तरदिशा की ओर अग्रसर होता हुआ सूर्य विषुवद वृत्त से जितना हटता जायगा, उतने ही अंश-कला उत्तरा क्रान्ति में वृद्धि होती जायगी। 21 जून को यह सर्वाधिक दूरी विषुवद् से बनाता है। 21 जून को कर्क रेखा को स्पर्श करते हुए सूर्य की परम क्रान्ति $23^0/26/39$ होती है। (प्राचीन काल में यह परम क्रान्ति 24^0 अंश मानी गई थी) ज्योतिषशास्त्र के प्रायः सभी मानकग्रन्थों में परमक्रान्ति के 24^0 होने का उल्लेख मिलता है। किन्तु आजकल वेधद्वारा सूर्य की परमक्रान्ति $23^0/26/39$ उपलब्ध है। सूर्य 21 जून से नाडी वृत्त की ओर लौटना प्रारम्भ करते हुए 22-23 सितम्बर को विषुवद् वृत्त पर आने के साथ क्रान्ति 0 शून्य हो जाती है। 23 सितम्बर से सूर्य दक्षिणगोलार्द्ध में प्रवेश करके दक्षिण दिशा मे अग्रसर होता हुआ 21 दिसम्बर के लगभग मकर रेखा को स्पर्श करता है। तब भी सूर्य की परमाधिक दक्षिणाक्रान्ति $23^0/26/39$ होती है। (प्राचीनकाल में यह भी 24^0 अंश थी) 22 दिसम्बर से सूर्य की दक्षिणाक्रान्ति में ह्रास प्रारम्भ होता है, 21 मार्च को नाडीवृत्त पर सूर्य के स्पर्श करने के कारण क्रान्ति पुनः 0 अंश पर आजाती है। यह क्रम पूरे वर्ष इसी तरह चलता रहता है।

संक्षेप में 21 मार्च से 21 जून तक क्रमशः 0 से $23^0/26/39$ तक उत्तरा क्रान्ति उपचीयमान होती है। 21 जून को कर्क रेखा से सूर्य दक्षिणामुखी होकर अपचीयमान उत्तरा क्रान्ति के साथ 23 सितम्बर को विषुवद् वृत्त के स्पर्श करते ही 0 शून्य क्रान्ति पर आ जाता है। 23 सितम्बर से दक्षिणगोलार्द्ध में प्रवेश करके उपचीयमान दक्षिणाक्रान्ति के साथ 21 दिसम्बर तक मकर रेखा को स्पर्श करते ही परमक्रान्ति $23^0/26/39$ प्राप्त कर लेता है। मकर रेखा को स्पर्श करने के पश्चात् सूर्य उत्तराभिमुखी होकर अपचीयमान दक्षिणाक्रान्ति के साथ पुनः 21 मार्च को नाडी वृत्त पर आ जाता है।

- 21 मार्च से 22 सितम्बर तक सूर्य उत्तगोल में रहता है।
- 23 सितम्बर से 20 मार्च तक सूर्य दक्षिण गोल में रहता है।
- 21 मार्च से 20 जून तक उपचीयमान उत्तराक्रान्ति होती है।
- 21 जून से 22 सितम्बर तक अपचीयमान उत्तराक्रान्ति होती है।
- 23 सितम्बर से 21 दिसम्बर तक उपचीयमान दक्षिणाक्रान्ति होती है।

- 22 दिसम्बर से 20 मार्च तक अपचीयमान दक्षिणाक्रान्ति होती है।

सूर्य 21 जून से दक्षिणायन (कर्क रेखा से लौटने पर) एवं 22 दिसम्बर से (मकर रेखा से लौटने पर) उत्तरायण प्रारम्भ हो जाता है।

चर की स्थिति -

आचार्य भास्कराचार्य जी ने स्वग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में चर की स्थिति का वर्णन करते हुए कहा है कि –

उन्मण्डलक्ष्मा वलयान्तराले द्युरात्रवृत्ते चरखण्डकालः।

तज्याऽत्र कुज्या चर शिञ्जनि स्यात् व्यासार्ध वृत्ते परिणामिता सा।।

अर्थात् सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से चरखण्ड सदैव द्युरात्रवृत्त में अर्थात् अहोरात्र वृत्त में स्थित होता है।

4.4 क्रान्ति एवं चर साधन

गणितीय प्रक्रिया द्वारा सूक्ष्म क्रान्ति का साधन त्रिकोणमिति की सहायता से किया जा सकता है। उदाहरणार्थ - 6 जुलाई 2012 शुक्रवार को विद्यापीठ पंचांग में स्पष्ट सूर्य = $2/20^0/20/20$ तथा केतकी अयनांश = $24^0/00/53$ है। स्पष्ट सूर्य में अयनांश जोड़ने पर सायन सूर्य = राश्यादि सूर्य

$2/20^0/20/20$

अंशादि $+ \underline{24^0/00/53}$

3-14-21-13

राश्यादि सायन सूर्य

राशि संख्या को 30 से गुणा कर अंशादि सायन सूर्य = $104^0/21/13$ सुविधा की दृष्टि से अंशादि को दशमलव में परिणत करने पर = 104^0, 3537 = अंशादि सायन सूर्य हुआ। साइन्टिपिफक कैलुकेलेटर (संगणक) की सहायता से, सूक्ष्मक्रान्ति का साधन अनुपात द्वारा किया जाता है- 90^0 अंशकी ज्या अर्थात् त्रिज्या (नोट-यहाँ पर त्रिज्या का मान 1 होता है) में परमक्रान्तिज्या (ज्या 23.4442) प्राप्त होती है। तो अभीष्ट सायन सूर्य की ज्या (ज्या 104^0.3537) में क्या?

$$= \frac{\text{परमक्रान्तिज्या} \times \text{सायनसूर्यभुजज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{\text{क्रांतिज्या} = \text{ज्या}\ (23.4442) \times \text{ज्या}\ (104.3537)}{1}$$

= .385436219 = अभीष्ट क्रान्तिज्या। कैलकुलेटर द्वारा चाप लेने पर = 220.6708 = 220 अंश

40। कला अभीष्ट क्रान्ति। क्रान्तिसारिणी में 6 जुलाई को क्रान्ति 260/40 लिखी हुई है। त्रिकोणमिति से परिचित लोग बगैर सारिणी के कैलकुलेटर (संगणक) की सहायता से सूक्ष्म क्रान्ति प्राप्त कर सकते हैं। सामान्यलोग क्रान्तिसारिणी में अभीष्ट दिनाङ्क की क्रान्ति लेकर आगे चर साधन की प्रक्रिया सम्पन्न कर सकते हैं। जैसा कि आप जान चुके हैं क्षितिज के ऊपर स्थित सूर्यादि ग्रहों के बिम्बो का दर्शन होता है। क्षितिज के नीचे स्थित बिम्बों का दर्शन नहीं होता। प्रत्येक स्थान का क्षितिज भिन्न-भिन्न होने के कारण एक समय पर सभी बिम्ब सभी स्थानों पर दिखलाई नहीं दे सकते हैं। जितने समय सूर्य का दर्शन होता रहे उतने समय का दिन, सूर्य के दिखलाई न देने पर रात्रि की परिभाषा भी आपलोग जानते ही हैं। किसी भी वृत्त (गोल) के आधे भाग में 180^0 अंश अथवा 30 घटी अर्थात् 12 घण्टे होते हैं। चित्र के माध्यम से स्पष्ट दिखलाई दे रहा है, कि विषुवद् वृत्त पर सूर्य रहने की स्थिति में (21 मार्च और 23 सितम्बर को) उत्तरी अक्षांश वालों के क्षितिज अथवा दक्षिणी अक्षांश वालों के क्षितिज में ठीक आधे भाग में अर्थात् 12 घण्टे सूर्य के दर्शन होने से 12 घण्टे का दिन एवं 12 घण्टे की रात्रि होती है। निरक्षदेशीय क्षितिज में प्रतिदिन 12 घण्टे का दिन एवं 12 घण्टे की रात्रि होती है। उत्तर एवं दक्षिणी क्षितिज के अन्दर उससे या कम समय सूर्य के दिखलाई देने पर दिनरात्रिमान में ह्रास वृद्धि दिखलाई देगी। 21 मार्च से 22 सितम्बर तक सूर्य के उत्तरी गोलार्द्ध में रहने

क्रान्ति- सारिणी

दिनाङ्क → / माह ↓	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	31
जनवरी +	23	22	22	22	22	22	22	22	22	22	21	21	21	21	21	21	20	20	20	20	20	19	19	19	19	18	18	18	18	17	17
	4	59	54	48	42	36	28	21	13	4	16	47	37	27	16	05	54	12	30	18	5	51	38	24	10	55	40	24	9	53	36
फरवरी +	17	17	16	16	16	15	15	15	14	14	14	13	13	13	12	12	12	11	11	11	10	10	10	9	9	9	8	8	07	x	x
	20	02	45	28	10	52	33	15	56	37	17	57	37	17	57	36	16	55	34	13	51	29	07	45	23	1	39	16	53	x	x
मार्च +	07	07	6	6	5	5	5	4	4	4	3	3	2	2	2	1	1	0	0	0	0	0	1	1	1	2	2	3	3	3	4
	30	07	45	22	58	35	12	49	25	02	38	14	51	27	03	40	16	52	29	05	− 19	43	06	30	54	17	41	04	27	51	14
अप्रैल -	4	5	5	5	6	6	6	7	7	8	8	8	9	9	9	10	10	10	11	11	11	12	12	12	13	13	13	14	14	14	x
	37	00	23	46	09	32	55	17	39	02	24	45	07	29	51	12	33	54	15	35	56	16	36	56	16	35	54	13	32	50	x
मई -	15	15	15	16	16	16	16	17	17	17	17	18	18	18	18	19	19	19	19	20	20	20	20	20	21	21	21	21	21	21	21
	09	27	44	03	19	36	52	09	25	41	56	12	27	41	55	09	23	36	49	02	14	26	38	49	00	10	20	30	39	48	57
जून -	22	22	22	22	22	22	22	22	22	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	x
	05	13	21	28	34	41	47	52	57	02	06	10	14	17	19	22	23	25	26	26	26	26	26	25	23	21	19	16	13	10	x
जुलाई -	23	23	22	22	22	22	22	22	22	22	22	21	21	21	21	21	21	20	20	20	20	20	20	19	19	19	19	18	18	18	18
	06	02	57	51	46	40	34	27	20	13	05	57	48	39	30	20	10	59	49	38	26	14	02	49	36	23	10	15	42	28	12
अगस्त -	17	17	17	17	16	16	16	16	15	15	15	14	14	14	13	13	13	13	12	12	12	11	11	11	10	10	9	9	9	8	8
	58	43	27	11	55	38	22	05	48	30	12	54	36	18	59	40	21	02	42	23	03	42	22	02	41	20	59	38	17	55	34
सितम्बर -	8	7	7	7	6	6	6	5	4	4	4	4	3	2	2	2	1	1	1	0	0	0	0	0	0	1	1	2	2	2	x
	12	50	28	06	44	22	00	37	14	52	29	06	43	20	57	34	11	47	4	01	37	−14	+09	33	56	19	43	06	29	53	x
अक्टूबर +	3	3	4	4	4	5	5	5	6	6	7	7	7	8	8	8	9	9	10	10	10	11	11	11	12	12	12	13	13	13	14
	16	39	02	26	49	12	35	58	20	43	06	28	51	13	35	59	19	42	03	25	46	07	28	49	10	30	51	11	31	51	10
नवम्बर +	14	14	15	15	15	16	16	16	16	17	17	17	18	18	18	18	19	19	19	19	19	20	20	20	20	20	21	21	21	21	x
	30	49	08	26	45	03	20	38	55	12	29	45	01	17	32	47	02	16	30	44	58	11	23	35	47	59	10	20	31	41	x
दिसम्बर +	21	21	22	22	22	22	22	22	22	22	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23
	50	59	08	16	24	31	38	44	50	56	01	06	10	14	17	20	22	24	25	26	26	26	26	25	24	22	19	17	13	10	05

नोट :- सूर्य की क्रान्ति 21 मार्च से 22 सितम्बर तक उत्तरा (-) तथा 23 सितम्बर से 20 मार्च तक दक्षिणा (+) होती है। क्रान्ति अंश एवं कला में है।

की स्थिति में चित्र में उत्तरी अक्षांश वालों के क्षितिज में निरक्ष क्षितिज के आधेभाग + चर + चर। तुल्य सूर्य दर्शन होने से दिनमान में वृद्धि तथा रात्रिमान में ह्रास स्पष्ट दिखलाई दे रहा है। उसी समय (21 मार्च से 22 सितबर) दक्षिणक्षितिज वृत्त के अन्तर्गत द द। भाग में ही सूर्य का दक्षिण अक्षांश वालों को दर्शन हो रहा है। जो कि आधेवृत्त से बहुत कम है। अतः सिद्ध हुआ कि सूर्य के उत्तर गोल में रहने पर दक्षिण अक्षांश वाले स्थानों पर दिन का मान 12 घण्टे से न्यून एव रात्रिमान 12 घण्टे से अधिक होता है। इसी प्रकार दक्षिणी गोलार्द्ध में (23 सितम्बर से 21 मार्च) सूर्य के जाने पर दक्षिणी अक्षांश पर चित्र में नीचे 12 घंटे +चर + चर। अर्थात् 12 घण्टे से अधिक समय का दिन एवं 12 घण्टे से कम समय की रात्रि स्पष्ट दिखलाई दे रही है। उसी समय (23 सितम्बर से 21 मार्च) उत्तर अक्षांश वाले स्थानों के क्षितिजवृत्त का अल्पभाग केवल स स। भाग पर ही सूर्य का दर्शन हो रहा है। अतः दक्षिणी गोलार्द्ध में सूर्य के क्षितिज काल में उत्तर – अक्षांश वाले स्थानों पर दिन में ह्रास एवं

चित्र सं.- 5

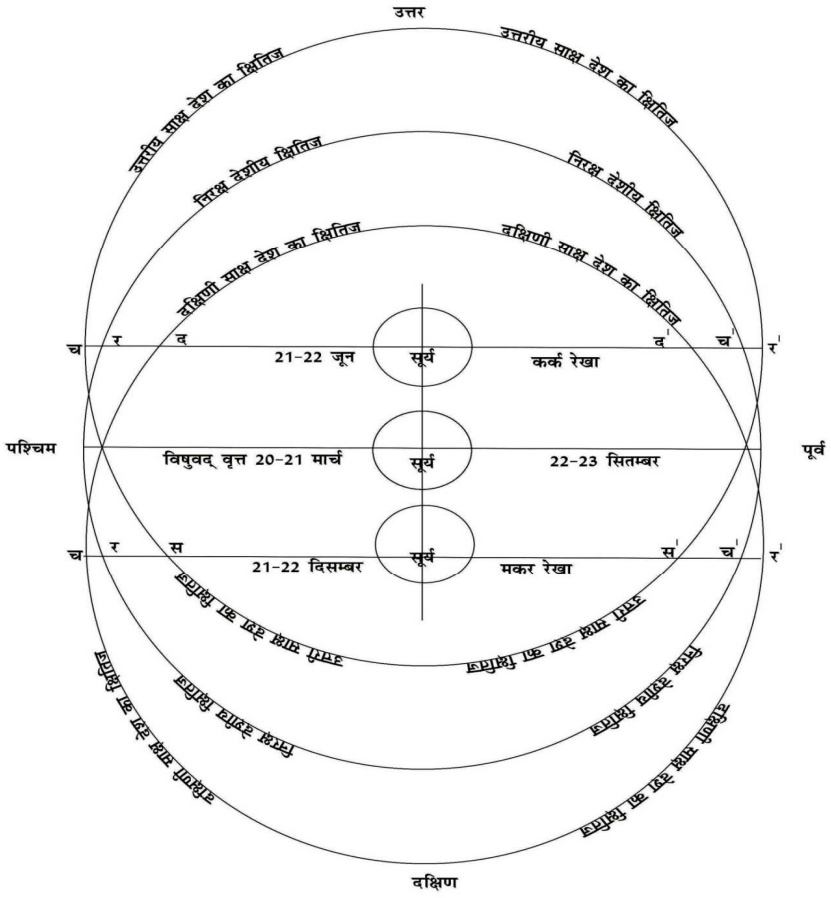

रात्रि मान में वृद्धि स्पष्ट दिखलाई दे रही है। आशा है आपलोग चित्र के माध्यम से दिनरात्रि के ह्रास-वृद्धिमान में चर की भूमिका से परिचित हो गये होंगे।

बोध प्रश्न –

1. सैद्धान्तिक दृष्टि से सूर्य का सम्बन्ध किससे है?
   क. चर से ख. क्रान्ति से ग. चरान्तर से घ. कदम्ब से
2. सूर्य की परमक्रान्ति का मान कितना है?
   क. २३ अंश ख. २५ अंश ग.२४ अंश घ. २६ अंश
3. सायन मेषराशि में प्रवेश के समय क्या है?
   क. २२ मार्च ख. २३ सितम्बर ग. २१ सितम्बर घ. २१ मार्च
4. जब सूर्य मेषादि छ: राशियों में होता है, तो कौन सा गोल होता है।
   क. दक्षिण गोल ख. उत्तर गोल ग. खगोल घ. भगोल
5. सूर्य जब कर्कादि छ: राशियों में होता है, तो कौन सा अयन होता है?
   क. उत्तरायण ख. दक्षिणायन ग. अयन घ. कोई नहीं
6. चरखण्ड सदैव किस वृत्त में होता है?
   क. क्रान्तिवृत्त ख. नाड़ीवृत्त ग. अहोरात्रवृत्त घ. दृगवृत्त
7. 23 सितम्बर से 20 मार्च तक सूर्य किस गोल में रहता है।
   क. दक्षिण ख. उत्तर ग. पूर्व घ. पश्चिम
8. ध्रुवस्थान से ९० अंश की त्रिज्या निर्मित वृत्त को क्या कहते हैं?
   क. नाड़ीवृत्त ख. क्रान्तिवृत्त ग. पूर्वापर वृत्त घ. अहोरात्रवृत

चर ज्ञात करने की विधि-

प्रत्येक स्थान का क्षितिजवृत्त पृथक्-पृथक् होने से प्रत्येक स्थान पर सूर्योदय भिन्न-भिन्न समय पर होना अवश्यम्भावी है। सूर्योदय होने पर दिन का प्रारम्भ एवं सूर्यास्त होने पर दिन की समाप्ति तथा रात्रि का प्रारम्भ होकर पुनः दूसरे दिन सूर्योदय तक रात्रि की समाप्ति एवं द्वितीय दिन का प्रारम्भ होता है। भिन्न-भिन्न समय मे सूर्योदय होने से विभिन्न स्थानों पर धूप घड़ी का समय भी पृथक् पृथक् होता है ।

सामान्य रूप से जिस स्थान पर जब भी सूर्योदय होता है। उस स्थान पर धूप घड़ी (सूर्यघड़ी) का प्रातः 6.00 बजे का समय स्थूल मध्यममान से होता है। मध्याह्न (दिन के आधे भाग) में स्थानीय 12 बजे सूर्यास्त पर शाम के 6.00 बजे तथा रात्रिमान के आधे भाग पर रात्रि के 12 बजे माना जाता है। इस

समय को स्थानीय मध्यम समय (LMT) के नाम से जाना जाता है। किन्तु जैसा कि आप जान चुके हैं। किसी भी समयमान से साक्ष देशों में प्रतिदिन 6.00 बजे सूर्योदय नहीं होता। इसमें चर की प्रमुख भूमिका होती है। समस्त भारतवर्ष उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित होने से भारतवर्ष के प्रत्येक स्थान पर 31 मार्च से 22 सितम्बर तक दिन बड़ा और रात्रि छोटी होती हैं। अतः इन दिनों 6.00बजे पूर्व सूर्योदय तथा सायं 6 बजे बाद सूर्यास्त होने पर ही दिन बड़ा और रात्रि छोटी हो सकती हैं। सामान्यतया मध्यमसूर्योदय प्रातः 6.00 बजे और मध्यम सूर्यास्त शाम 6.00 बजे के बिन्दु को चलायमान करने वाले इस समय संस्कार को ही चर (विचलित करने वाला) संस्कार कहते हैं।

इसका ज्ञान किसी भी स्थान के अक्षांश तथा उस दिन की क्रान्ति के जानने के बाद ही हो सकता है। किसी नगर का अक्षांश किसी नक्शे, एटलस, प्रमुख पंचांग आदि के द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। चर बोधक सारिणी (आगे दी हुई है) में अभीष्ट अक्षांश एवं अभीष्ट क्रान्ति के कोष्टकों से चरमिनटादि प्राप्त होते हैं। सारिणी में निरवयव अक्षांश (केवल अंशमात्र) एवं निरवयव क्रान्त्यंश (केवल अंशमात्र) दिये गये हैं। अभीष्ट नगर का अक्षांश सावयव (अंश-कलात्मक) तथा अभीष्ट दिनाङ्क की सावयव क्रान्ति (अंश-कलात्मक) हो तो आगे पीछे के अक्षांश क्रान्ति के कोष्टकों से अनुपात द्वारा न्यूनाधिक करके सूक्ष्म मिनिट सैकिण्ड के रूप में चर प्राप्त किया जा सकता है। अन्यथा केवल निरवयव अक्षांश एवं क्रान्ति से सारिणी द्वारा प्राप्त चर मिनिट सैकिण्ड से भी काम चलाया जा सकता है, किन्तु यह चरमान कुछ स्थूल होगा।

त्रिकोणमिति की जानकारी हो तो संगणक (कैलुकेलेटर) की सहायता से सूक्ष्म चर की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। अक्षांश की स्पर्शज्या × क्रान्ति स्पर्शज्या = चरज्या होती है। इसका चापांश बनाकर 4 से गुणा करने पर मिनिट सैकिण्डात्मक चर प्राप्त किया जा सकता है। यह सूक्ष्मतम चर होता है। संगणक का उपयोग न करने वाले लोग चर का ज्ञान निम्न प्रकार से भी कर सकते हैं।

$$\frac{\text{अक्षांश} \times \text{क्रान्ति} \times 2}{25} = \text{लब्धि} = \text{मिनिट सैकिण्डात्मक चर}।$$

जहां पर अक्षांश अंश कला में हो और क्रान्ति भी अंशकला मे हो तो सुविधा की दृष्टि से 30। कला के कम होने पर कलाकात्याग करके 30 से ऊपर होने पर अग्रिम अंश मानकर अथवा अक्षांश-क्रान्ति दोनों ही कलात्मक हों तो दोनों के कलामान को जोड़कर किसी एक में अंक वृद्धि कर ऊपर के नियम से चर की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। किन्तु यह प्रकार स्थूल है। इस प्रकार से चर में 1-2 मिनट का नगण्य अन्तर आता है। अक्षांश एवं क्रान्ति अधिक होने पर अन्तर अधिक भी हो

सकता है। उदाहरण - दिनांक 16 जुलाई 2012 को हरिद्वार में चर ज्ञात करना अभीष्ट है। हरिद्वार का उत्तरी अक्षांश $29^0/56$ है। क्रान्ति सारिणी में 16 जुलाई को उत्तराक्रान्ति $21^0/20$ दी हुई है। क्रम से तीनों प्रकार से चरसाधन प्रदर्शित है-

(1) संगणक द्वारा - अक्षांशस्पर्शज्या × क्रान्तिस्पर्शज्या = चरज्या, चाप × 4 = चरमिनट सैकिण्ट = 0.575799907 × 0.390554085 = चरज्या (0.224881006) चाप बनाया चाप = 12.99588101, चाप को 4 से गुणा करने पर = 51.98352403 यह मिनटात्मक दशमलव में अभीष्ट चर प्राप्त हुआ । इसको मिनट-सैकिण्ड में संगणक की सहायता से परवर्तित करने पर 51 मिनट 59 सैकिण्ड अभीष्ट चर प्राप्त हुआ। यह सूक्ष्म है।

(2) इसी उदारण को वगैर संगणक के दिये हुए सूत्र के अनुसार देखें।

$$\frac{\text{अक्षांश} \times \text{क्रान्ति} \times 2}{25} = \frac{29^0/56 \times 21^0/20 \times 2}{25}$$

(यहां अक्षांश एक क्रान्ति दोनो ही अंश कला में हैं) अतः अक्षांश 290/56। के स्थान पर 300 अंश एवं क्रान्ति 21^0

$/20^0$ के स्थान पर केवल 21^0 अंश लेकर किया प्रदर्शित है -

$$\frac{30 \times 21 \times 2}{25} = \frac{6 \times 21 \times 2}{5} = \frac{252}{5}$$ = चर 50 मिनट 50 सेकेण्ड प्राप्त हुआ ।

यह कुछ स्थूल है, किन्तु अपनाया जा सकता है।

(3) सारिणी द्वारा अक्षांश 30^0 एवं क्रान्ति 21^0 के मध्य कोष्ठक मे चर 51 मि. 13 सै. है। यह भी स्थूल है।

अब सारिणी में अनुपात द्वारा सूक्ष्म चरसाधन का प्रयास प्रदर्शित है। अक्षांश में क्रान्ति की चरकला मिलाने पर अक्षांश की पूर्ण संख्या 30^0 मान ली। क्रान्ति 21^0-16 रह गई । 30^0 अक्षांश के सामने क्रान्ति 21^0 के नीचे चरमिनट 21 मि. 13 सै. 22^0 क्रान्ति कोष्ठक में 53मि. 57 सै. है। दोनों का अन्तर 53मि.-57सै. - 51मि.-13सै. = 2मि.-44सै. = 164सै. अब अनुपात किया 10 अंश अर्थात् 60 कला में 164 सै. की वृद्धि है तो 16 कला में क्या?

$$\frac{164 \times 16}{60} = \frac{656}{15}$$ = 44 सेकेण्ड

= 44 सै. 21^0 क्रान्ति से प्राप्त चर में जोड़ने पर 51मि.+ 13सै. + 0मि. - 44 सै. = 51मि. - 57सै. चर प्राप्त हो गया कैलकुलेटर द्वारा प्राप्त 51 मि. 59 सै. के लगभग तुल्य ही है।

अतः सारिणी के उपयोग से सामान्य जन सूक्ष्मासन्न चर प्राप्त कर सकते है। सारिणी उपलब्ध न होने की स्थिति मे स्थूल चर भी प्राप्त करके कार्य चलाया जा सकता है। यह अन्तर 1-2 मिनट तक नगण्य रहता है।

सूक्ष्म चर की जानकारी चर सारिणी द्वारा प्राप्त की जा सकती है। सारिणी द्वारा प्राप्त चर कैलुकेलेटर द्वारा चर प्राप्ति के तुल्य ही सिद्ध होता है। समस्त भारत वर्ष में चर (मिनिट सैकिण्डात्मक) को उत्तराक्रान्ति में 6 बजे में घटाने एवं दक्षिणा क्रान्ति में 6 बजे में जोड़ने पर स्थानीय मध्यममान से (धूप घड़ी का) सूर्योदय अभीष्टनगर का प्राप्त हो जाता है। किन्तु यह धूपघड़ी का भी स्थानीय मध्यम मान से प्राप्त होता है।

4.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि सैद्धान्तिक दृष्टि से क्रान्ति का सम्बन्ध सूर्य से है। नाड़ीवृत्त से सूर्य कितना उत्तर या दक्षिण भाग में स्थित है? इस ज्ञान को जानने या समझने का नाम 'क्रान्ति' है। हमारे ग्रन्थों में सूर्य की परमक्रान्ति २४ अंश मानी जाती है। क्रान्तिवृत्त का इतना तिर्यकत्व शकपूर्व २४०० वर्ष के लगभग था। वह क्रमश: न्यून होता जा रहा है। शक १८१८ के आरम्भ का उसका मान २३/२७/१० है अर्थात् सम्प्रति हमारे ग्रन्थों की क्रान्ति में ३२ अंश ५० कला अशुद्धि है। शक ४०० के आसन्न तिर्यकत्व लगभग २३/३९ था। भूमध्यरेखा (विषुवद् रेखा) से जिस प्रकार पृथिवी उत्तर-दक्षिण गोलार्द्ध में विभाजित है। आकाश में विषुवद् रेखा से ठीक ऊपर विषुवद् वृत्त (नाड़ी वृत्त) की कल्पना की गई है। नाड़ी वृत्त पर सूर्य सायन मेषादि एवं सायन तुलादि पर आता है। सायन मेषराशि में प्रवेश के समय (21 मार्च) रहता है। नाडी वृत्त पर क्रान्ति शून्य रहती है। नाडीवृत्त से सूर्य उत्तर गोल में प्रवेश करके निरन्तर उत्तर की ओर बढ़ता रहता है। नाडीवृत्त को अतिक्रान्तकर जितना उत्तर दिशा में सूर्य हटेगा। उतनी ही क्रान्ति होगी। सायन मेष प्रवेश काल से सायन मिथुनराशि के अन्त (21 मार्च से 21 जून तक) सूर्य उत्तर दिशा में बढ़ता जायगा। नाडी वृत्त से जितने अंश-कला दूर होगा। तत्तुल्य ही क्रान्ति होगी। 22 जून से (सायन कर्क प्रवेश काल से) उत्तर गोल में रहते हुए भी सूर्य लौटते हुए दक्षिण दिशा की ओर अग्रसर हो जाता है। सायन कर्क से सायन कन्या राशि पर्यन्त रवि की क्रान्ति अपचीयमान होते हुए शून्य पर आ जाती है। 22 सितम्बर के बाद 23 सितम्बर से अर्थात् सायन तुलाराशि प्रवेश से सूर्य दक्षिण गोलार्द्ध में प्रवेश करके निरन्तर दक्षिण दिशा की ओर अग्रसर होता है। 23 सितम्बर से दक्षिणा क्रान्ति प्रारम्भ होकर धनु राशि के अन्त (21 दिसम्बर) तक निरन्तर दक्षिणा क्रान्ति सर्वाधिक होती है सायन मकरराशिप्रवेश अर्थात् 22 दिसम्बर से मीन राशि के अन्त तक यानि 20 मार्च तक

दक्षिणगोलस्थसूर्य की क्रान्ति अपचीयमान होकर शून्यतक आजाती है। 21 मार्च से पुनः सूर्य की क्रान्ति शून्य होकर उत्तरगोलार्द्ध की ओर सूर्य बढ़ता है। वहाँ से सूर्य की उत्तराक्रान्ति पुनः प्रारम्भ हो जाती है। इस प्रकार 21 मार्च से 21 जून अधिकतम उत्तराक्रान्ति 22 जून से 22 सितम्बर तक अपचीयमान उत्तराक्रान्ति एवं 23 सितम्बर से दक्षिणाक्रान्ति का प्रारम्भ हो जाता है। क्रान्ति भेद से, अक्षांश की तरह सूर्योदय काल भी प्रभावित होता है। अक्षांश-क्रान्ति एक दिशा में होने से सूर्योदय जल्दी एवं दिनमान में वृद्धि तथा भिन्न दिशा में अक्षांश क्रान्ति होने से देर से सूर्योदय एवं दिनमान में ह्रास होता है। जिस प्रकार भूमध्य रेखा से विभाजित भूगोल उत्तर-दक्षिण भेद से दो भागों में विभाजित हो जाता है। ठीक उसी प्रकार आकाश (खगोल) भी नाड़ीवृत्त से उत्तर, दक्षिण दिशा मे दो भागों में विभाजित है। भूमि पर उत्तर-दक्षिण दिशा के भेद से अक्षांशों की जानकारी पूर्व में दी जा चुकी है। आप अक्षांशों से पूर्णपरिचित हो चुके हैं। उत्तरी-दक्षिणी गोलार्द्धों में सूर्य की स्थिति के द्वारा आपलोग क्रान्ति से भली-भाँति परिचित हो सकेंगे।

मेषादि 12 राशियों में रहते हुए दीवाल घड़ी के पेण्डुलम की तरह सूर्य मेष से कन्याराशि तक 6 राशियों में नाडी वृत्त (विषुवद्वृत्त) से निरन्तर उत्तर की ओर बढ़कर पुनः नाडीवृत्त पर लौटता है। यह स्थिति 21 मार्च से 22 सितम्बर तक रहती है। 23 सितम्बर से, मीन राशि पर्यन्त सूर्य क्रमशः दक्षिण दिशा में बढ़ता हुआ पुनः लौट कर 21 मार्च को नाड़ी वृत्त पर आ जाता है।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

क्रान्ति – नाड़ीवृत्त से सूर्य की याम्योत्तर स्थिति का नाम क्रान्ति है। यह दो प्रकार का होता है।

चर – गणितीय दृष्टि से द्युरात्रवृत्त में चरखण्ड होता है, चरखण्ड की ज्या को चरज्या कहते है। सामान्यतया मध्यमसूर्योदय प्रातः 6.00 बजे और मध्यम सूर्यास्त शाम 6.00 बजे के बिन्दु को चलायमान करने वाले समय संस्कार को ही चर (विचलित करने वाला) संस्कार कहते हैं।

अपम – क्रान्ति का दूसरा नाम अपम भी है।

परमक्रान्ति – सूर्य की परमक्रान्ति 24 अंश है।

सूक्ष्मासन्न – सूक्ष्म के नजदीक

आभाषिक – देखने में लगने वाली स्थिति

सूर्योदय – सूर्य का उदय सूर्योदय कहलाता है। सूर्य का चाक्षुषदृष्ट्या दर्शन सूर्योदय होता है।

सूर्यास्त – सूर्य का अदर्शन या अस्त हो जाना सूर्यास्त कहलाता है। अथवा सूर्य का क्षितिज के नीचे चले जाना सूर्यास्त कहलाता है।

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सूर्यसिद्धान्त – महावीर प्रसाद श्रीवास्तव

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय/ कपिलेश्वर शास्त्री

भारतीय ज्योतिष – शंकरबालकृष्णदीक्षित

ग्रहगति का क्रमिक विकास – श्रीचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ. सत्यदेव शर्मा

ज्योतिष रहस्य - जगजीवन दास गुप्ता

4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. ग
3. घ
4. ख
5. ख
6. ग
7. क
8. क

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. क्रान्ति किसे कहते है? स्पष्ट रूप से लिखिये।
2. चर से आप क्या समझते है?
3. सूक्ष्म क्रान्ति का साधन कैसे किया जाता है?
4. चर साधन कीजिये?
5. गणित ज्योतिष में क्रान्ति एवं चर की महत्ता बतलाइये?

इकाई - 5 ग्रहस्पष्टीकरण

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 ग्रह परिचय

5.4 ग्रह साधन

5.5 सारांश

5.6 पारिभाषिक शब्दावली

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम.ए. ज्योतिष पाठ्यक्रम के द्वितीय सेमेस्टर के द्वितीय पत्र एमएजेवाई–506 के चतुर्थ खण्ड की पाँचवीं इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है - ग्रहस्पष्टीकरण। इससे पूर्व की ईकाइयों में आपने अहर्गण एवं मध्यम ग्रह, मन्दफल –शीघ्रफल, उदयान्तर, देशान्तर, भुजान्तर, क्रान्ति एवं चरान्तर आदि का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। अब आप सिद्धान्त गणित ज्योतिष का मुख्य आधार ग्रहस्पष्टीकरण के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

ग्रहाणां स्पष्टीकरणं ग्रहस्पष्टीकरणम्। यह गणित ज्योतिष का मेरूदण्ड है। इसके ज्ञानाभाव में ज्योतिष शास्त्र में प्रवेश असम्भव है।

अत: आइए हम इस इकाई में ग्रहस्पष्टीकरण के बारे में जानने का प्रयास करते है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ग्रहस्पष्टीकरण किसे कहते है? बता सकेंगे।
- ग्रहस्पष्टीकरण की प्रक्रिया को समझा सकेंगे।
- ग्रहस्पष्टीकरण को उदाहरण द्वारा बतला सकेंगे।
- इसके महत्व का निरूपण कर सकेंगे।

5.3 ग्रहस्पष्टीकरण परिचय

ग्रह को भूमण्डल की एक प्रदक्षिणा करने में जितना समय लगता है तदनुसार उसकी एक दिन की जो मध्यम गति आती है, आकाश में प्रतिदिन उतनी ही नहीं बल्कि उससे कुछ न्यून या अधिक का अनुभव होता है। इस कारण मध्यम गति द्वारा इष्टकाल में उसकी स्थिति जहाँ आती है वहाँ वह उस समय नहीं दिखाई देता। आकाश में प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाली गतिस्थिति को स्पष्ट गतिस्थिति कहते हैं। गणितागत मध्यम गतिस्थिति द्वारा ग्रह की स्पष्ट गतिस्थिति का निरूपण ही **'ग्रहस्पष्टीकरण'** है। ग्रहाणां स्पष्टीकरणं ग्रहस्पष्टीकरणम्। अर्थात् ग्रहों की गणितीय स्पष्टीकरण की क्रिया ग्रहस्पष्टीकरण कहलाती है। सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र ग्रहों पर आधारित है। अत: ग्रहस्पष्टीकरण ज्योतिषशास्त्र का प्राण है। ग्रहों का स्पष्टीकरण गणित ज्योतिष के अन्तर्गत करते हैं। पाश्चात्य विद्वान कोपर्निकस द्वारा आविष्कृत और केप्लर, न्यूटन इत्यादिकों द्वारा दृढ़ता से स्थापित ग्रहगति के सम्प्रति प्राय: सर्वमान्य बने हुए वास्तव सिद्धान्तों के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा की

मध्यमगति से स्पष्टगति भिन्न होने का एक मुख्य कारण है। वह यह कि पृथ्वी सूर्य की और चन्द्रमा पृथ्वी की प्रदक्षिणा दीर्घवृत्त में करते हैं। अन्य ग्रहों की मध्यमगति से स्पष्टगति भिन्न होने के कारण दो हैं। एक तो यह कि बुधादि पाँच ग्रह सूर्य के चारों और दीर्घवृत्त में घूमते हैं इसलिए उनके कक्षावृत्तों में मध्यमगति से स्पष्टगति भिन्न होती है और दूसरा कारण यह है कि सूर्यसम्बन्धी यह भिन्न स्थिति हम पृथ्वी पर से देखनेवालों को और भी भिन्न दिखाई देती है, क्योंकि सूर्य के चारों ओर घूमते रहने के कारण आकाश में पृथ्वी का स्थान सदा बदलता रहता है।

यद्यपि भास्कराचार्य जी ने भौमादि ग्रहों के स्पष्ट स्थानों के लिए पहले मन्दफल फिर शीघ्रफल संस्कार करने की व्यवस्था की है किन्तु केवल एक बार ही इन संस्कारों के द्वारा आकाश में ग्रहों के स्पष्ट स्थान उपलब्ध न हो सके, इसलिए इस प्रक्रिया में संशोधन स्वरूप इन फलों का दो बार संस्कार किया गया। पहले मध्यम ग्रह में शीघ्रफल का आधा संस्कार कर फिर उसमें मन्दफल का आधा संस्कृत कर, इस पर से फिर मन्दफल लाकर इस पूरे मन्दफल का मध्यम में संस्कार कर उस मन्दस्पष्ट ग्रह से शीघ्र केन्द्र बनाकर तब पूरे शीघ्रफल का संस्कार उस मन्दस्पष्ट में करने पर भूदृश्य स्पष्टग्रह होता है। सूर्यसिद्धान्त में यही प्रक्रिया लिखी है।

भास्कराचार्य ने ब्रह्मगुप्त की सारिणी के अनुसार असकृत् (अनेक बार) मन्दफल और शीघ्रफल का संस्कार कहा है। ग्रहगणित और उनकी आकाशीय स्थिति की समता के लिए अनेक भारतीय आचार्यों ने ग्रहवेध के द्वारा इस दिशा में स्तुत्य प्रयत्न किया है। उनमें ब्रह्मगुप्त, केशव और उनके पुत्र गणेश दैवज्ञ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। गणेश दैवज्ञ ने अपने ग्रहसाधन में एक तृतीय सारणि का आश्रय लिया है। उसके अनुसार पहले मध्यम ग्रह में शीघ्रफल का आधा संस्कार कर फिर उस पर से मन्दफल लाकर इस पूरे मन्दफल को मध्यम ग्रह में संस्कृत कर उस मन्दस्पष्ट से शीघ्रकेन्द्र लाकर उस पर से लाये गये शीघ्रफल का संस्कार मन्दस्पष्ट में करने पर स्पष्ट ग्रह होता है। यथा –

प्राङ्गमध्यमे चलफलस्य दलं विदध्यात्।
तस्माच्च मान्दमखिलं विदधीत मध्ये।।
द्राक्केन्द्रकेऽपि च विलोममतश्च शीघ्रम्।
सर्वं च तत्र विदधीत भवेत् स्फुटो ऽसौ।।

इन विधि से साधित ग्रह आधुनिक ग्रहों से थोड़े ही अन्तरित होते है। ग्रहसाधन की इस फल संस्कार प्रणाली से सिद्ध है कि ताराग्रहों के लिए पहले शीघ्रफल संस्कार करके ही भारतीयों ने मन्दफल संस्कार का आविष्कार किया था।

सूर्यसिद्धान्त में कहे गये भौमादि (मंगल, बुध, गुरु, शुक्र एवं शनि) पंचतारा ग्रहस्पष्टीकरण –

मूलश्लोक -

मान्दं कर्मैकमर्केन्द्वोभौमादीनामथोच्यते।
शैघ्रयं मान्दं पुनर्मान्दं शैघ्रयं चत्वार्यनुक्रमात्।।
मध्ये शीघ्रफलस्यार्धं मान्दमर्धफलं तथा।
मध्यग्रहे मन्दफलं सकलं शैघ्रमेव च।।

अर्थात् सूर्य और चन्द्रमा मन्दफल के केवल एक संस्कार से स्पष्ट होते है, परन्तु मंगल आदि पाँच ग्रहों में शीघ्रफल का एक संस्कार करने के पीछे मन्दफल के दो बार संस्कार करने पड़ते हैं जिसके पीछे चौथी बार फिर शीघ्रफल का संस्कार करना होता है।

मध्यम ग्रह को शीघ्रोच्च में से घटा कर शीघ्र केन्द्र और इससे शीघ्रफल निकाल कर उस शीघ्रफल का आधा मध्यम ग्रह में जोड़े (यदि शीघ्रकेन्द्र ६ राशि से कम हो) और घटावे (यदि शीघ्र केन्द्र ६ राशि से अधिक हो) जोड़ने या घटाने से जो आता है वही प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह कहलाता है। इस प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह को मन्दोच्च में से घटाकर, शेष को मन्द केन्द्र समझ कर मन्दफल बनावे। इस मन्द फल का आधा, प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह में जोड़ने या घटाने से जो आता है वही द्वितीय संस्कार युक्त मध्यम ग्रह है। दूसरे संस्कार युक्त मध्यम ग्रह को मन्दोच्च में से फिर घटावे और शेष को दूसरा मन्दकेन्द्र मानकर दूसरा मंदफल बनाना चाहिये। इस मन्दफल को मध्यम ग्रह में जोड़ने या घटने से जो आता है वही मन्दस्पष्ट ग्रह कहलाता है। मन्द स्पष्ट ग्रह को शीघ्रोच्च में से घटाकर शीघ्रकेन्द्र और शीघ्रफल बनावे और इस शीघ्रफल को मन्दस्पष्ट ग्रह में जोड़ने या घटाने से जो कुछ शेष आता है वही **'स्पष्टग्रह'** कहलाता है।

हमारे प्राचीन आचार्यों ने चन्द्रमा का स्पष्ट स्थान जानने के लिए मन्दफल का संस्कार करने की रीति बतायी है। परन्तु इससे वास्तव में चन्द्रमा का स्पष्ट स्थान नहीं निकलता। चन्द्रमा इतना छोटा पिण्ड है कि इस पर सभी ग्रहों का प्रभाव पड़ता है, जिसके कारण इसकी गति में बहुत सी भिन्नतायें उत्पन्न हो जाती है। इसलिए आजकल छोटे-छोटे कोई ४० संस्कार करने से चन्द्रमा का स्पष्ट स्थान शुद्धतापूर्वक जाना जा सकता है। इन चालीस संस्कारों में पाँच संस्कार बहुत बड़े हैं जो अवश्य करने चाहियें। **ग्रहस्पष्टीकरण नियम –**

शीघ्रोच्च – मध्यम ग्रह = शीघ्रकेन्द्र, जिसका शीघ्रफल पहला शीघ्रफल कहलाता है।

प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह = मध्यम ग्रह ± शीघ्रफल प्रथम

२

मन्दोच्च – प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह = संस्कृत मन्द केन्द्र जिसका मन्दफल प्रथम संस्कृत मन्दफल है।

दूसरा संस्कार युक्त मध्यम ग्रह –

= प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह ± मन्दफल (प्रथम संस्कृत)

२

= मध्यम ग्रह ± (प्रथम) शीघ्रफल ± (प्रथम) मन्दफल

२ २

मन्दोच्च – दूसरा संस्कारयुक्त मध्यम ग्रह = दूसरा संस्कृत मन्दकेन्द्र जिसका मन्दफल दूसरा संस्कृत मन्दफल है।

मन्दस्पष्टग्रह = मध्यमग्रह ± दूसरा संस्कृत मन्दफल।

शीघ्रोच्च – मन्द स्पष्ट ग्रह = दूसरा शीघ्रकेन्द्र जिसका शीघ्रफल दूसरा शीघ्रफल है।

स्पष्ट ग्रह = मन्द स्पष्ट ग्रह ± दूसरा शीघ्र फल

= मध्यम ग्रह ± दूसरा मन्दफल ± दूसरा शीघ्रफल

यह तो सूर्यसिद्धान्त के शब्दों में स्पष्ट ग्रह जानने की रीति हुई। परन्तु व्यवहार में यह जटिल है। अत: महावीर प्रसाद श्रीवास्तव द्वारा बतायी गयी विधि सरल है जिसका यहाँ उल्लेख कर रहा हूँ –

पहली परिभाषा मन्दोच्च – मध्यम ग्रह = मन्दकेन्द्र

दूसरी परिभाषा शीघ्रोच्च – मध्यम ग्रह = शीघ्रकेन्द्र

शीघ्रकेन्द्र से जो शीघ्रफल निकलता है वह पहला शीघ्रफल है। ..... १ समीकरण

प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह = मध्यम ग्रह ± प्रथम शीघ्रफल ..... २ समीकरण

२

प्रथम संस्कृत मन्द केन्द्र

= मन्दोच्च - प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह

= मन्दोच्च – (मध्यम ग्रह) ± प्रथम शीघ्रफल

२

= (मन्दोच्च - मध्यम ग्रह) ± प्रथम शीघ्रफल

२

= मन्द केन्द्र ± प्रथम शीघ्रफल ..... ३ समीकरण

२

इससे प्रकट होता है कि प्रथम संस्कृत मन्द केन्द्र जानने के लिए समीकरण २ की आवश्यकता नहीं, वरन् मन्दकेन्द्र में पहले शीघ्रफल का आधा चिह्न उलट कर जोड़ देने से ही काम चल जायेगा। इससे जो मन्दफल बनाया जायेगा वही पहला मन्दफल या प्रथम संस्कृत मन्दफल होगा।

दूसरा संस्कार युक्त मध्यम ग्रह

= प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह ± प्रथम मन्दफल

२

= मध्यम ग्रह

= प्रथम शीघ्रफल ± प्रथम मन्दफल ..... समीकरण ४

२ २

दूसरा संस्कृत मन्द केन्द्र

= मन्दोच्च – दूसरा संस्कार युक्त मध्यम ग्रह

= मन्दोच्च (मध्यम ग्रह ± प्रथम शीघ्रफल ± प्रथम मन्दफल)

२ २

(मन्दोच्च – मध्यम ग्रह)

= प्रथम शीघ्रफल ± प्रथम मन्दफल)

२ २

= (मन्दकेन्द्र ± प्रथम शीघ्रफल) ± प्रथम मन्दफल

२ २

= प्रथम संस्कृत मन्दकेन्द्र = प्रथम मन्दफल

२ समीकरण ५

जिससे यह सिद्ध हुआ कि दूसरा संस्कृत मन्द केन्द्र जानने के लिए प्रथम संस्कृत मन्द केन्द्र में पहले मन्दफल का आधा चिह्न उलट कर जोड़ दे। इसलिए समीकरण ४ की भी आवश्यकता नहीं है। दूसरे संस्कृत मन्द केन्द्र से जो मन्दफल बनाया जायेगा वही दूसरा मन्दफल होगा।

मन्दस्पष्ट ग्रह = मध्यम ग्रह ± दूसरा मन्दफल ..... समीकरण ६

दूसरा शीघ्र केन्द्र = शीघ्रोच्च – मन्दस्पष्ट ग्रह

= शीघ्रोच्च - (मध्यम ग्रह) ± दूसरा मन्दफल

= शीघ्रोच्च – मध्यम ग्रह ± दूसरा मन्दफल

= शीघ्रकेन्द्र ± दूसरा मन्दफल ..... समीकरण ७

इससे यह सिद्ध हुआ कि दूसरा शीघ्र केन्द्र जानने के लिए, शीघ्र केन्द्र में दूसरा मन्दफल चिह्न उलट कर जोड़ दो। इसलिए समीकरण ६ की भी आवश्यकता नहीं है। दूसरे शीघ्र केन्द्र से जो शीघ्र फल बनेगा वही दूसरा शीघ्र फल है।

स्पष्ट ग्रह = मन्दस्पष्ट ग्रह ± दूसरा शीघ्रफल

= मध्यम ग्रह ± दूसरा मन्दफल ± दूसरा शीघ्रफल ..... (८)

जिससे सिद्ध होता है कि मध्यम ग्रह में दूसरे मन्दफल को और दूसरे शीघ्रफल को बीजगणित के अनुसार योग करें अर्थात् जो धनात्मक हो उसको जोड़े और जो ऋणात्मक हो उसको घटायें। दूसरा मन्दफल और दूसरा शीघ्रफल समीकरण ५ और ७ से समझना चाहिए।

संक्षेप में आप इस प्रकार नियम को समझ सकते हैं –

1. शीघ्रफल का आधा चिह्न उलट कर मन्दकेन्द्रों में (बीजगणित के अनुसार) जोड़ दे तो प्रथम संस्कृत मन्द केन्द्र आ जायेगा। इसी का मन्दफल प्रथम संस्कृत मन्दफल या पहला मन्दफल है।
2. प्रथम संस्कृत मन्दकेन्द्रों में पहले मन्दफल का आधा चिह्न उलट कर जोड़ दे तो दूसरा संस्कृत मन्द केन्द्र आ जोयगा। इसी का मन्दफल दूसरा संस्कृत मन्दफल या दूसरा मन्दफल है।
3. शीघ्र केन्द्र में दूसरा मन्दफल चिह्न उलट कर जोड़ दे तो संस्कृत शीघ्र केन्द्र आयेगा, जिसका शीघ्रफल दूसरा शीघ्रफल है।
4. मध्यम ग्रह में दूसरा मन्दफल और दूसरा शीघ्रफल बिना चिह्न उलटें जोड़ने पर स्पष्ट ग्रह आ जाता है।

ग्रहलाघवीय रीति के अनुसार स्पष्ट मंगल ग्रह का साधन –

कल्पना किया कि मध्यम चन्द्रमा के अनुसार मध्यम मंगल के राश्यादि मान - ०२।०६।०६। ४८,

मध्यम सूर्य - ११।१९।२६।५८

'भौमार्किज्यविहीनमध्यमरवि: स्यात्स्वाशुकेन्द्रं तु विद्' इत्यादि ग्रहलाघवीय श्लोक के अनुसार मंगल का शीघ्रफल यहाँ साधन करते हैं –

मध्यम सूर्य - ११।१९।२६।५८

मध्यम मंगल - - ०२।०६।०६।४८

०९।१३।०।१० मंगल का शीघ्रकेन्द्र

शीघ्रकेन्द्र छ: राशि से अधिक होने के कारण चक्र में से उसे घटाने पर –

१२।००।००।००

- ०९।१३।२०।१०

०२।१६।३९।५०

इसे अंशादि बनाकर पन्द्रह सं भाग देकर लब्धांकतुल्य शीघ्रफल प्राप्त होता है।

१५) ७६। ३९।५० (५ लब्धाङ्क तुल्य शीघ्राङ्क २७९ आया।

७५

१ ।३९।५० शेष।

लब्धशीघ्राङ्क से अग्रिमशीघ्राङ्कं ३२५ का अन्तर करने पर ४६ आया इसे शेष से गुणा कर १५ से भाग देने पर -

०१।३९।५० × ४६ = ७६।३२।२०

१५) ७६।३२।२० (०५

७५

०१ × ६० + ३२ = ९२

१५) ९२ । २० (०६

९०

०२ × ६० + २० = १४०

१५) १४० (०९

१३५

१५

२७९ । ००। ००

\+ ०५ ।०६।०९

२८४ । ०६ । ०९ शीघ्रफल

इसे १० से भाग देने पर - १०)२८४।०६।१९ (२८

२८०

०४ × ६० + ६ = २४६ । ०९

१०) २४६।०९ (२४

२४०

६ × ६० + ९ = ३६९

१०) ३६९ (३६ + १

३६०

यहाँ मंगल का शीघ्रफल २८।२४।३७ तथा शीघ्रफलार्द्ध १४।१२।१८ आया।

शीघ्रकेन्द्र का तुलादि छ: राशियों में होने के कारण ऋणं किया। अत: मध्यम मंगल में घटाने पर –

मध्यम मंगल का राश्यादिमान - ०२।०६।०६।४८

शीघ्रफलार्द्ध का राश्यादि मान - ००।१४।१२।२८

०१।२१।५४।३० शीघ्रफलार्द्धसंस्कृत मंगल हुआ।

मंगल का मन्दफल साधन करते हैं –

मंगल का मन्दोच्चराश्यादि मान - ०४।००।००।००

शीघ्रफलार्द्धसंस्कृत मंगल - ०१।२१।५४।३०

०२।०८।०५।३० मन्दकेन्द्र।

इसे १५ से भाग देकर लब्धांकतुल्य मन्दांक ग्रहण करते है।

१५) ६८ ।०५ ३० (०४ लब्धाङ्त्तुल्यमन्दाङ्क १०९ हुआ।

६०

०८।०५।३० - शेष

लब्ध मन्दांक से अग्रिम मन्दांक का अन्तर करने पर १२४ आया। शेष में १५ से गुणा कर १५ से भाग देने पर -

०८।०५।३० × १५ = १२१। २२।३० (०८

१५) १२१ ।२२।३० (०८

१२०

०१ × ६० + २२ = ८२

१५) ८२ ।३० (०५

७५

०७ × ६० + ३० = ४५०

१५) ४५० (३०

४५०

लब्धफल को जोड़ने पर –

१०९।००।००

\+ ०८।०५।३०

११७।०५।३० शीघ्रफल।

इसे १० से भाग देने पर

१०) ११७ ।०५।३० (४२

११०

०७ × ६० + ०५ = ४२५

१०) ४२५ ।३० (४२

४२०

०५ × ६० + ३० = ३३०

१०) ३३० (३३

३३०

मंगल का मन्दफल ११। ४२।३३। मन्दकेन्द्र मेषादिषड् राशियों में होने के कारण धन संस्कार किया

मध्यम मंगल राश्यादि - ०२।०६।०६।४८

मंगल का मन्दफल - ००। ११।४२।३३

०२।१७।४९।२१ मन्दस्पष्ट मंगल हुआ।

द्वितयशीघ्रफलसाधनार्थं प्रथमशीघ्रकेन्द्राद् मन्दफलं विलोमपद्धत्या: संस्क्रियते। अर्थात् पूर्वं धनं चेद् ऋणं स्यात् । यतो हि मन्दफलं पूर्वं धनं स्यात्, अतो इत्यत्र ऋणं क्रियते।

शीघ्रकेन्द्रराश्यादि: - ०९।१३।२०।१०

मन्दफलराश्यादि: - ००।११।४२।३३

०९ । ०१।३७।३७ मंगल का द्वितीयशीघ्रकेन्द्र

द्वितीयशीघ्रकेन्द्र छ: राशि से अधिक होने के कारण चक्र में से घटाने पर -

१२।००।००।००

- ०९।०१।३७।३७

०२।२८।२२।२३

इमां लवादिकृत्वा पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्क तुल्यशीघ्रफलं लभ्यते।

१५) ८८।२२।२३ (५ लब्धाङ्क तत्तुल्यं शीघ्राङ्का: २७९ लब्धम्।

७५

१३।२२।२३ परिशेषं।

लब्धशीघ्राङ्कादग्रिमशीघ्राङ्कं ३२५ अनयोरन्तरं ४६ इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते।

१३।२२।२३ × ४६ = ६१५।०९।३८

१५) ६१५।०९।२३ (४१

६१५

०० × ६० + ०९ = ०९

१५) ०९ ।२३ (००

× ६० + २३ = ५६३

१५) ५६३ (३७ + १

५५५

लब्धफलं संयोज्यते तदा -

२७९।००।००

+ ४१। ००।३८

३१०। ००।३८ शीघ्रफलं।

इमां दशभिर्विभज्यते तदा –

१०) ३१० ।००।३८ (३१

३१०

०० × ६० + ०० = ००

१०) ०० ।३८ (००

× ६० + ३८ = ३८

१०) ३८ (३ + १

१०

२८

यहाँ मंगल का द्वितीयशीघ्रफल ३१।००।०४ । शीघ्रकेन्द्रस्यतुलादिषड्भे त्वाद् ऋणं स्यात्।

अत: मन्दस्पष्ट मंगल का राश्यादि मान = ०२। १७। ४९। २१

द्वितीयशीघ्रफलराश्यादि = - ०१।०१।००।०४

०१।१६।४९।१७ स्पष्ट मंगल सिद्ध हुआ।

बोध प्रश्न –

1. ज्योतिष शास्त्र मुख्यतया किस पर आधारित है?
   क. नक्षत्रों पर ख. ग्रहों पर ग. राशियों पर घ. भूमण्डल पर
2. सूर्य एवं चन्द्र ग्रह के स्पष्टीकरण में किसकी आवश्यकता होती है?
   क. मन्दफल की ख. शीघ्रफल की ग. मन्दफल-शीघ्रफल की घ. कोई नहीं
3. मध्यम ग्रह में मन्दोच्च घटाने पर क्या आता है?
   क. शीघ्रकेन्द्र ख. मन्दकेन्द्र ग. प्रतिवृत्त घ. कक्षावृत्त
4. आधुनिक मतानुसार ग्रह किस वृत्त में घूमते है?
   क. दीर्घवृत्त में ख. कक्षावृत्त में ग. क्रान्तिवृत्त में घ. प्रतिवृत्त में
5. ग्रहों की कितनी प्रकार की गति होती है।
   क. ५ ख.६ ग.७ घ.८
6. भास्कराचार्य जी ने ग्रहसाधन हेतु किसकी सारिणी का उपयोग करने के लिए कहा है?
   क. ब्रह्मगुप्त की ख. मकरन्द की ग. लोग सारिणी की घ. कोई नहीं
7. ज्या-चाप से रहित ग्रहसाधन की विधि किस ग्रन्थ में उद्धृत है।
   क. ग्रहलाघव ख. सिद्धान्तशिरोमणि ग. केतकीग्रहगणित घ. सूर्यसिद्धान्त
8. भौमादि पंचताराग्रह साधन में किसकी आवश्यकता होती है?
   क. मन्दफल की ख. मन्दफल-शीघ्रफल ग. शीघ्रफल घ.शीघ्रकेन्द्र

ग्रहलाघवीय रीति से स्पष्ट बुध ग्रह का साधन -

बुधकेन्द्रराश्यादि: - ०४।०९।२३।३५

इमां लवादि कृत्वा पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यशीघ्रफलं लभ्यते।

१५) १२९।२३।३५ (८ लब्धाङ्क तत्तुल्यं शीघ्राङ्का: २१२ लब्धम्।

१२०

०९।२३।३५ परिशेषं।

लब्धशीघ्राङ्कादग्रिमशीघ्राङ्कं १९५ अनयोरन्तरं इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते लब्धफलं विशोध्यते तदा –

०९।२३।३५ × १७ = १५९।३९।५५

१५) १५९।३९।५५ (१०

१५०

०९ × ६० + ३९ = ५७९

१५) ५७९।५५ (३८

५७०

९ × ६० + ५५ = ५९५

१५) ५९५ (३३ +

५९५

लब्धफलं विशोध्यते तदा -

२१२। ००। ००

१०। ३८। ३३

२०१। २१। २७ शीघ्रफलं।

इमां दशभिर्विभज्यते तदा –

१०) २०१।२१।२७ (२०

२००

०१ × ६० + २१ = ८१

१०) ८१।२७ (०८+१

८०

अतो बुधशीघ्र फलं २०।०८।०९। शीघ्रफलार्द्धं १०।०४। ०४ जायते। शीघ्रकेन्द्रस्य मेषादि षड्भे त्वाद् धनं स्यात्। अतो मध्यमबुधेयोज्यते तदा –

मध्यमबुधराश्यादि: - ११।१९।२६।५८

शीघ्रफलार्द्धराश्यादि: - ००।१०।०४।०४

११।२९।३१।०२ शीघ्रफलार्द्धसंस्कृतबुध: स्यात्।

बुधस्य मन्दफलं साध्यते तद्यथा –

बुधमन्दोच्चराश्यादि: - ०७।००।००।००

शीघ्रफलार्द्धसंस्कृतबुध: - ११।२९।३२।०२

०७।००।२८।५८ मन्दकेन्दम्

मन्दकेन्द्रस्य रसैर्विशोध्य: षड्भाल्पं क्रियते –

०७।००।२८।५८

०६।००।००।००

०१।००।२८।५८

इमां पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यमन्दाङ्का: गृह्यते ।

१५) ६०।२८।५८ (०४ लब्धाङ्क तत्तुल्यं मन्दाङ्का: २८ लब्धम्।

६०

०।२८।५८ परिशेषं।

लब्धमन्दाङ्कादग्रिममन्दाङ्कं ३३ अनयोरन्तरं इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते

००।२८।५८ × ५ = ०२।२४।५०

१५) २।२४।५० (००

× ६० + २४ = १४४

१५) १४४।५० (०९

१३५

९ × ६० + ५० = ५९०

१५) ५९० (३९

५८५

लब्धफलं संयोज्यते तदा -

२८। ००। ००

००। ०९। ३९

२८। ०९। ३९ शीघ्रफलं।

इमां दशभिर्विभज्यते तदा –

१०) २८।०९।३९ (०२

२०

०८ × ६० + ९ =४८९

१०) ४८९।३९ (४८

४८०

०९ × ६० + ३९ = ४७९

१०) ४७९ (४७ + १

४७०

अतो बुधमन्दफलं ०२।४८।४८। मन्दकेन्द्रे तुलादिषड्भे त्वाद् ऋणं स्यात्।

मध्यमबुधराश्यादि: - ११।१९।२६।५८

बुधमन्दफलं - ००।०२।४८।४८

११।१६।३८।१० मन्दस्पष्टबुध: स्यात् ।

द्वितीयशीघ्रफलसाधनार्थं प्रथमशीघ्रकेन्द्राद् मन्दफलं विलोमपद्धत्या संस्क्रियते। अर्थात् पूर्वं धनं चेद् ऋणं स्यात्। यदि पूर्वं ऋणं तदा धनं स्यात्। यतो हि मन्दफलं पूर्वं ऋणं स्यात्। अतो इत्यत्र धनं क्रियते।

शीघ्रकेन्द्रराश्यादि: - ०४।०९।२३।३५

मन्दफलराश्यादि: + ००।०३।१७।०२

४।१२।४०।३७ बुधस्यद्वितीयशीघ्रकेन्द्रं।

इमां लवादिकृत्वा पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यशीघ्रफलं लभ्यते ।

१५) १३२।४०।३७ (०८ लब्धाङ्क तत्तुल्यं मन्दाङ्का: २१२ लब्धम्।

१२०

१२।४०।३७ परिशेषं।

लब्धशीघ्रङ्कादग्रिमशीघ्राङ्कम् १९५ अनयोरन्तरं १७ इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते।

१२।४०।३७ × १७ = २१५।३०।२९

१५) २१५।३०।२९ (१४

२१०

५ × ६० + ३० = ३३०

१५) ३३०।२९ (२२

३३०

०० × ६० + २९ = २९

१५) २९ (१ + १

१५

१४

लब्धफलं विशोध्यते तदा -

२१२। ००। ००

१४। २२। ०२

१९७। ३७। ५८ शीघ्रफलं।

इमां दशभिर्विभज्यते तदा –

१०) १९७।३७।५८ (१९

१९०

०७ × ६० + ३७ =४५७

१०) ४५७।५८ (४५

४५०

०७ × ६० + ५८ = ४७८

१०) ४७८ (४७ + १

४७०

अतो बुध द्वितीयशीघ्रफलं १९।४५।४८। शीघ्रकेन्द्रस्यमेषादिषड्भे त्वाद् धनं स्यात् ।

मन्दस्पष्टबुधराश्यादि: - ११।१६।३८।१०

द्वितीयशीघ्रफलराश्यादि: - ००। १९।४५ ।४८

००। ०६। २३। ५८ स्पष्टबुध:।

स्पष्ट गुरु ग्रह का साधन -

'भौमार्किज्यविहीनमध्यमरवि: स्यात्स्वाशुकेन्द्रं तु विद्' इत्यादिग्रहलाघवीय श्लोकानुसारेण गुरोशीघ्रफलं साध्यते तद्यथा –

मध्यमरवि: - ११।१९।२६।५८

मध्यमगुरू: - ०४।२१।४७।५१

०६।२७।३९।०७ गुरो: शीघ्रकेन्दम्

शीघ्रकेन्द्रस्य षड्भादधिकत्वाच्छीघ्रकेन्द्रं चक्राद्विशोधयेत् –

१२।००।००।००

०६।२७।३९।०७

०५।०२।२०।५३

इमां लवादिकृत्वा पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यशीघ्रफलं लभ्यते।

१५) १५२। २०।५३ (१० लब्धाङ्क तुल्य शीघ्राङ्का: ६६ लब्धम्।

१५०

२ ।२०।५३ परिशेषम्।

लब्धशीघ्राङ्कादग्रिमशीघ्राङ्कं ३६ अनयोरन्तरं ३० इमा परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते।

०२।२०।५३ × ३० = ७०।२६।३०

१५) ७०।२६।३० (०४

६०
१० × ६० + २६ = ६२६
१५) ६२६ । ३० (४१
६१५
११ × ६० + ३० = ६९०
१५) ६९० (४६
६९०

६६ । ०० । ००
- ०४ । ४१ । ४६
६१ । ११ । १४ शीघ्रफलम्
इमां इशभिर्विभज्यते तदा - १०)६१।११।१४ (०६
६०
०१ × ६० + १८ = ७८ । १४
१०) ७८।१४ (०७
७०
८ × ६० + १४ = ४९४
१०) ४९४ (४९
४९०
अतो कुज शीघ्रफलं ०६।०७।४९ शीघ्रफलार्द्ध ०३।०३।५४
शीघ्रकेन्द्रस्यतुलाभिषङ्भे त्वाद् ऋणं स्यात्। अतो मध्यमकुजाविशोध्यते तदा –
मध्यमगुरोराश्यादि: - ०४।२१।४७।५१
शीघ्रफलार्द्धराश्यादि: - ००।०३।०३।५४
०४।१८।४३।५७ शीघ्रफलार्द्धसंस्कृतगुरू: स्यात्।
गुरोर्मन्दफलं साध्यते तद्यथा –
गुरूमन्दोच्चराश्यादि: - ०६।००।००।००
शीघ्रफलार्द्धसंस्कृतकुज: - ०४।१८।४३।५७
०१।११।१६।०३ मन्दकेन्दम्
इमां पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यमन्दाङ्का: गृह्यते।
१५) ४१ ।१६। ०३ (०२ लब्धाङ्त्तुल्यमन्दाङ्का: २७ लब्धम्।
३०
११।१६।०३ परिशेषं

लब्धमन्दाङ्कादग्रिममन्दाङ्कं ३९ अनयोरन्तरं १२ इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते

११।१६।०३ × १२ = १३५। १२।३६

१५) १३५ ।२१।३६ (०९

१३५

०० × ६० + १२ = १२

१५) १२ ।३६ (००

× ६० + ३६ = ७५६

१५) ७५६ (५०

७५०

लब्धफलं संयोज्यते तदा –

२७।००।००

\+ ०९।००।५०

३६।००।५० मन्दफलांक: ।

इमां दशभिर्विभज्यते तदा -

१०) ३६ ।००।५० (०३

३०

०६ × ६० + ०० = ३६०

१०) ३६० । ० (३६

३६०

०० × ६० + ५० = ५०

१०) ५० (०५

५०

अतो गुरोमन्दफलं ०३। ३६ । ०५ । मन्दकेन्द्रे मेषादिषड्भे त्वाद् धनं स्यात् ।

मध्यमकुजराश्यादि: - ०४।२१।४७।५१

कुजमन्दफलं - ००। ०३।३६।०५

०४।२५।२३।५६ मन्दस्पष्टगुरू: स्यात् ।

द्वितयशीघ्रफलसाधनार्थं प्रथमशीघ्रकेन्द्राद् मन्दफलं विलोमपद्धत्या: संस्क्रियते । अर्थात् पूर्वं धनं चेद् ऋणं स्यात् । यतो हि मन्दफलं पूर्वं धनं स्यात्, अतो इत्यत्र ऋणं क्रियते।

शीघ्रकेन्द्रराश्यादि: - ०६।२७।३९।०७

मन्दफलराश्यादि: - ००।०३।३६।०५

०६ । २४।०३।०२ गुरो द्वितीयशीघ्रकेन्द्रम्

द्वितीयशीघ्रकेन्द्रं षड्भादधिकत्वाच्चक्राद्विशोध्यते -

१२।००।००।००

०६।२४।०३।०२

०५।०५।५६।५८

इमां लवादिकृत्वा पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्क तुल्यशीघ्रफलं लभ्यते।

१५) १५५।५६।५८ (१० लब्धाङ्क तत्तुल्यं शीघ्राङ्का: ६६ लब्धम्।

१५०

०५।५६।५८ परिशेषं।

लब्धशीघ्राङ्कादग्रिमशीघ्राङ्कं ३६ अनयोरन्तरं २० इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते।

०५।५६।५८ × २० = ११८।५९।२०

१५) ११८।५९।२० (०७

१०५

१३ × ६० + ५९ = ८३९

१५) ८३९।२० (५५

८२५

१४ × ६० + २० = ८६०

१५) ८६० (५७

८५५

लब्धफलं संयोज्यते तदा -

६६। ००। ००

०७। ५५। ५७

५८। ०४। ०३ शीघ्रफलं।

इमां दशभिर्विभज्यते तदा –

१०) ५८।०४।०३ (०५

५०

०८ × ६० + ०४ = ४८४

१०) ४८४।०३ (४८

४८४

४ × ६० + ३ = २४३

१०) २४३ (२४

२४०

अतो गुरूद्वितीयशीघ्रफलं ०५।४८।२३। शीघ्रकेन्द्रस्यतुलादिषड्भे त्वाद् ऋणं स्यात्।

मन्दस्पष्टगुरूराश्यादि: - ०४। २५। २३। ५६
द्वितीयशीघ्रफलराश्यादि: - ००।०५।४८।२४
०४।१९।३५।३२ स्पष्टगुरो: स्यात् ।

स्पष्ट शुक्र ग्रह का साधन -

'भौमार्किज्यविहीनमध्यमरवि: स्यात्स्वाशुकेन्द्रं तु विद्' इत्यादिग्रहलाघवीय श्लोकानुसारेण शुक्रस्य शीघ्रफलं साध्यते तद्यथा –

शुक्रकेन्द्रराश्यादि: - ०४।२२।३७।३३

इमां लवादि कृत्वा पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यशीघ्रफलं लभ्यते।

१५) १४२।३७।३३ (९ लब्धाङ्क तत्तुल्यं शीघ्राङ्का: ४६१ लब्धम्।
१३५
०७।३७।३३ परिशेषं।

लब्धशीघ्राङ्कादग्रिमशीघ्राङ्कं ४४३ अनयोरन्तरं १८ इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते लब्धफलं विशोध्यते तदा –

०७।३७।३३ × १८ = १३७।१५।५४

१५) १३७ ।१५।५४ (०९
१३५
०२ × ६० + १५ = १३५

१५) १३५ ।५४ (०९
१३५
०० × ६० + ५४ = ५४

१५) ५४ (३ + १
४५

लब्धफलं विशोध्यते तदा -

४६१ । ०० । ००
०९ । ०९ । ०४

४५१ । ५० । ५६ शीघ्रफलं।

इमां दशभिर्विभज्यते तदा –

१०) ४५१ ।५०।५६ (४५
४५०
०१ × ६० + ५० = ११०

१०) ११० । ५६ (०५+१

५०

अतो शुक्रशीघ्र फलं ४५।११।०६। शीघ्रफलार्द्धं २२।३५। ३३ जायते। शीघ्रकेन्द्रस्य मेषादि षड्भे त्वाद् धनं स्यात्। अतो मध्यमशुक्रेयोज्यते तदा –

मध्यमशुक्रराश्यादि: - ११।१९।२६।५८

शीघ्रफलार्द्धराश्यादि: - ००।२२।३५।३३

००।१२।०२।३१ शीघ्रफलार्द्धसंस्कृतशुक्र: स्यात्।

शुक्रस्य मन्दफलं साध्यते तद्यथा –

शुक्रमन्दोच्चराश्यादि: - ०३।००।००।००

शीघ्रफलार्द्धसंस्कृतबुध: - ००।१२।३५।३३

०२।१७।२४।२७ मन्दकेन्दम्

इमां पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यमन्दाङ्का: गृह्यते ।

१५) ७७।२४।२७ (०५ लब्धाङ्क तत्तुल्यं मन्दाङ्का: १५ लब्धम्।

७५

०२।२४।२७ परिशेषं।

लब्धमन्दाङ्कादग्रिममन्दाङ्कं १५ अनयोरन्तरं ०० इत्यत्र मन्दाङ्का: १५ एव स्यात्। इमां दशभिर्विभज्यते

१०) १५।००।०० (०१

१०

५ × ६० + ०० = ३००

१५) ३००। ०० (३०।०

३००

अतो शुक्रमन्दफलं ०१।३०।०० मन्दकेन्द्रे मेषादिषड्भे त्वाद् धनं स्यात् ।

मध्यमशुक्रराश्यादि: - ११।१९।२६।५८

शुक्रमन्दफलं - ००।०१।३०।००

११।२०।५६।५८ मन्दस्पष्टशुक्र: स्यात्।

द्वितीयशीघ्रफलसाधनार्थं प्रथमशीघ्रकेन्द्राद् मन्दफलं विलोमपद्धत्या संस्क्रियते। अर्थात् पूर्वं धनं चेद् ऋणं स्यात्। यदि पूर्वं ऋणं तदा धनं स्यात्। यतो हि मन्दफलं पूर्वं ऋणं स्यात्। अतो इत्यत्र धनं क्रियते।

शीघ्रकेन्द्रराश्यादि: - ०४।२२।३७।३३

मन्दफलराश्यादि: + ००।०१।३०।००

४।२१।०७।३३ शुक्रस्यद्वितीयशीघ्रकेन्द्रं।

इमां लवादिकृत्वा पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यशीघ्रफलं लभ्यते ।

१५) १४१।०७।३३ (०९ लब्धाङ्क तत्तुल्यं शीघ्रांका: ४६१ लब्धम्।

१३५

०६।०७।३३ परिशेषं।

लब्धशीघ्रङ्कादग्रिमशीघ्राङ्कम् ४४३ अनयोरन्तरं १८ इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते।

०६।०७।३३ × १८ = ११० ।१५।५४

१५) ११० ।१५।५४ (०७

१०५

५ × ६० + १५ = ३१५

१५) ३१५ ।५४ (२१

३१५

०० × ६० + ५४ = ५४

१५) ५४ (३ + १

४५

०९

लब्धफलं विशोध्यते तदा -

४६१ । ०० । ००

०७ । २१ । ०४

४५३ । ३८ । ५६ शीघ्रफलं।

इमां दशभिर्विभज्यते तदा –

१०) ४५३ ।३८।५६ (४५

४५०

०३ × ६० + ३८ = २१८

१०) २१८ ।५६ (२१

२१०

०७८× ६० + ५६ = ५३६

१०) ५३६ (५३ + १

५३०

अतो शुक्र द्वितीयशीघ्रफलं ४५।२१।५४। शीघ्रकेन्द्रस्यमेषादिषड्भे त्वाद् धनं स्यात् ।

मन्दस्पष्टशुक्रराश्यादि: - ११।२०।५६।५८

द्वितीयशीघ्रफलराश्यादि: - ०१। १५।२१ ।५४

०१। ०६। १८ । ५२ स्पष्टशुक्र:।

स्पष्ट शनि ग्रह का साधन -

'भौमार्किज्यविहीनमध्यमरवि: स्यात्स्वाशुकेन्द्रं तु विद्' इत्यादिग्रहलाघवीय श्लोकानुसारेण शनिशीघ्रफलं साध्यते तद्यथा –

मध्यमरवि: - ११।१९।२६।५८

मध्यमशनि: - ०२।१७।१५।३१

०९।०२।११।२७ शनिशीघ्रकेन्दम्

शीघ्रकेन्द्रस्य षड्भादधिकत्वाच्छीघ्रकेन्द्रं चक्राद्विशोधयेत् –

१२।००।००।००

०९।०२।११।२७

०२।२७।४८।३३

इमां लवादिकृत्वा पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यशीघ्रफलं लभ्यते।

१५) ८७। ४८।३३ (५ लब्धाङ्क तुल्य शीघ्राङ्का: ५४ लब्धम्।

७५

१२ ।४८।३३ परिशेषम्।

लब्धशीघ्राङ्कादग्रिमशीघ्राङ्कं ५७ अनयोरन्तरं ०३ इमा परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते।

१२।४८।३३ × ३ = ३८।२५।३९

१५) ३८।२५।३९ (०२

३०

०८ × ६० + २५ = ५०५

१५) ५०५ । ३९ (३३

४९५

१० × ६० + ३९ = ६३९

१५) ६३९ (४२ + १

६३०

लब्धफलं संयोज्यते तदा -

५४ । ०० । ००

- ०२ ।३३।४३

५६ । ३३ । ४३ शीघ्राङ्कम्।

इमां इशभिर्विभज्यते तदा - १०)५६।३३।४३ (०५

५०

०६ × ६० + ३३ = ३९३ । ४३

१०) ३९३।४३ (३९

३९०

०३ × ६० + ४३ = १२३

१०) १२३ (१२

१२०

अतो कुज शीघ्रफलं ०५।३९।१२ शीघ्रफलार्द्ध ०२।४९।३६

शीघ्रकेन्द्रस्यतुलाभिषङ्भे त्वाद् ऋणं स्यात् । अतो मध्यमशनिर्विशोध्यते तदा –

मध्यमशनिराश्यादि: - ०२।१७।१५।३१

शीघ्रफलार्द्धराश्यादि: - ००।०२।४९।३६

०२।१४।२५।५५ शीघ्रफलार्द्धसंस्कृतशनि: स्यात्।

शनिर्मन्दफलं साध्यते तद्यथा –

शनिमन्दोच्चराश्यादि: - ०८।००।००।००

शीघ्रफलार्द्धसंस्कृतशनि: - ०२।१४।२५।५५

०५।१५।३४।०५ मन्दकेन्दम् ।

०६।००।००।००

०५।१५।३४।०५

००।१४।२५।५५

इमां पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यमन्दाङ्का: गृह्यते।

१५) १४ ।२५। ५५ (० लब्धाङ्त्तुल्यमन्दाङ्का: ०० लब्धम्।

००

१४।२५।५५ परिशेषं

लब्धमन्दाङ्कादग्रिममन्दाङ्कं १९ अनयोरन्तरं १९ इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते

१४।२५।५५ × १९ = २७४। १२।२५

१५) २७४ ।१२।२५ (१८

२७०

०४ × ६० + १२ = २५२

१५) २५२ ।२५ (१६

२४०

१२ × ६० + २५ = ७४५

१५) ७४५ (४९ + १

७३५

लब्धफलं संयोज्यते तदा –

००।००।००

\+ १८।१६।५०

१८।१६।५० मन्दफलांक: ।

इमां दशभिर्विभज्यते तदा -

१०) १८ ।१६।५० (०१

१०

०८ × ६० + १६ = ४९६

१०) ४९६ । ५० (४९

४९०

०६ × ६० + ५० = ४१०

१०) ४१० (४५

४१०

अतो शनिमन्दफलं ०१। ४९ । ४१ मन्दकेन्द्रे मेषादिषड्भे त्वाद् धनं स्यात् ।

मध्यमशनिराश्यादि: - ०२।१७।१५।३१

शनिमन्दफलं - ००। ०१।४९।४१

०२।१९।०५।१२ मन्दस्पष्टशनि: स्यात् ।

द्वितयशीघ्रफलसाधनार्थं प्रथमशीघ्रकेन्द्राद् मन्दफलं विलोमपद्धत्या: संस्क्रियते । अर्थात् पूर्वं धनं चेद् ऋणं स्यात् । यतो हि मन्दफलं पूर्वं धनं स्यात्, अतो इत्यत्र ऋणं क्रियते।

शीघ्रकेन्द्रराश्यादि: - ०९।०२।११।२७

मन्दफलराश्यादि: - ००।०१।४९।४१

०९ । ००।२१।४६ शनिद्वितीयशीघ्रकेन्द्रम्

द्वितीयशीघ्रकेन्द्रं षड्भादधिकत्वाच्चक्राद्विशोध्यते -

१२।००।००।००

०९।००।२१।४६

०२।२९।३८।१४

इमां लवादिकृत्वा पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्क तुल्यशीघ्रफलं लभ्यते।

१५) ८९।३८।१४ (५ लब्धाङ्क तत्तुल्यं शीघ्राङ्का: ५४ लब्धम्।

७५

१४।३८।१४ परिशेषं।

लब्धशीघ्राङ्कादग्रिमशीघ्राङ्कं ५७ अनयोरन्तरं ०३ इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते।

१४।३८।१४ × ३ = ४३ ।५४।४२

१५) ४३ ।५४।४२ (०२

३०

१३ × ६० + ५४ = ८३४

१५) ८३९ ।२० (५५

८२५

०९ × ६० + ४२ = ५८२

१५) ५८२ (३८ + १

५७०

१२

लब्धफलं संयोज्यते तदा -

५४। ००। ००

०२। ५५। ३९

५६। ५५। ३९ शीघ्रफलं।

इमां दशभिर्विभज्यते तदा –

१०) ५६ ।५५।३९ (०५

५०

०६ × ६० + ५५ = ४१५

१०) ४१५ ।०६ (४१

४१०

५ × ६० + ३९ = ३३९

१०) ३३९ (३३

३३०

अतो शनिद्वितीयशीघ्रफलं ०५।४१।३४। शीघ्रकेन्द्रस्यतुलादिषड्भे त्वाद् ऋणं स्यात्।

मन्दस्पष्टशनिराश्यादि: - ०२। २९। ०५। १२

द्वितीयशीघ्रफलराश्यादि: - ००।०५।४१।३४

०२।१३।२३।३८ स्पष्टशनि: स्यात् ।

इस प्रकार ग्रहलाघवीय रीति से भौमदि पंचताराग्रहों का गणितीय साधन किया जाता है। ज्योतिष शास्त्र के अन्य आचार्यों ने भी स्व-स्व सिद्धान्त ग्रन्थों में ग्रहों का अपनी-अपनी रीति के अनुसार ग्रहसाधन किया है।

5.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि ग्रह को भूमण्डल की एक प्रदक्षिणा करने में जितना समय लगता है तदनुसार उसकी एक दिन की जो मध्यम गति आती है, आकाश में प्रतिदनि उतनी ही नहीं बल्कि उससे कुछ न्यून या अधिक का अनुभव होता है। इस कारण मध्यम गति द्वारा इष्टकाल में उसकी स्थिति जहाँ आती है वहाँ वह उस समय नहीं दिखाई देता। आकाश में प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाली गतिस्थिति को स्पष्ट गतिस्थिति कहते हैं। गणितागत मध्यम गतिस्थिति द्वारा ग्रह की स्पष्ट गतिस्थिति का निरूपण ही '**ग्रहस्पष्टीकरण**' है। ग्रहाणां स्पष्टीकरणं ग्रहस्पष्टीकरणम्। अर्थात् ग्रहों की गणितीय स्पष्टीकरण की क्रिया ग्रहस्पष्टीकरण कहलाती है। सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र ग्रहों पर आधारित है। अत: ग्रहस्पष्टीकरण ज्योतिषशास्त्र का प्राण है। ग्रहों का स्पष्टीकरण गणित ज्योतिष के अन्तर्गत करते हैं।

पाश्चात्य विद्वान कोपर्निकस द्वारा आविष्कृत और केप्लर, न्यूटन इत्यादिकों द्वारा दृढ़ता से स्थापित ग्रहगति के सम्प्रति प्राय: सर्वमान्य बने हुए वास्तव सिद्धान्तों के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा की मध्यमगति से स्पष्टगति भिन्न होने का एक मुख्य कारण है। वह यह कि पृथ्वी सूर्य की और चन्द्रमा पृथ्वी की प्रदक्षिणा दीर्घवृत्त में करते हैं। अन्य ग्रहों की मध्यमगति से स्पष्टगति भिन्न होने के कारण दो हैं। एक तो यह कि बुधादि पाँच ग्रह सूर्य के चारों और दीर्घवृत्त में घूमते हैं इसलिए उनके कक्षावृत्तों में मध्यमगति से स्पष्टगति भिन्न होती है और दूसरा कारण यह है कि सूर्यसम्बन्धी यह भिन्न स्थिति हम पृथ्वी पर से देखनेवालों को और भी भिन्न दिखाई देती है, क्योंकि सूर्य के चारों ओर घूमते रहने के कारण आकाश में पृथ्वी का स्थान सदा बदलता रहता है।

यद्यपि भास्कराचार्य जी ने भौमादि ग्रहों के स्पष्ट स्थानों के लिए पहले मन्दफल फिर शीघ्रफल संस्कार करने की व्यवस्था की है किन्तु केवल एक बार ही इन संस्कारों के द्वारा आकाश में ग्रहों के स्पष्ट स्थान उपलब्ध न हो सके, इसलिए इस प्रक्रिया में संशोधन स्वरूप इन फलों का दो बार संस्कार किया गया। पहले मध्यम ग्रह में शीघ्रफल का आधा संस्कार कर फिर उसमें मन्दफल का आधा संस्कृत कर, इस पर से फिर मन्दफल लाकर इस पूरे मन्दफल का मध्यम में संस्कार कर उस मन्दस्पष्ट ग्रह से शीघ्र केन्द्र बनाकर तब पूरे शीघ्रफल का संस्कार उस मन्दस्पष्ट में करने पर भूदृश्य स्पष्टग्रह होता है। सूर्यसिद्धान्त में यही प्रक्रिया लिखी है। भास्कराचार्य ने ब्रह्मगुप्त की सारिणी के अनुसार असकृत् (अनेक बार) मन्दफल और शीघ्रफल का संस्कार कहा है। ग्रहगणित और उनकी आकाशीय स्थिति की समता के लिए अनेक भारतीय आचार्यों ने ग्रहवेध के द्वारा इस दिशा में स्तुत्य प्रयत्न किया है। उनमें ब्रह्मगुप्त, केशव और उनके पुत्र गणेश दैवज्ञ का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

गणेश दैवज्ञ ने अपने ग्रहसाधन में एक तृतीय सारणि का आश्रय लिया है। उसके अनुसार पहले मध्यम ग्रह में शीघ्रफल का आधा संस्कार कर फिर उस पर से मन्दफल लाकर इस पूरे मन्दफल को मध्यम ग्रह में संस्कृत कर उस मन्दस्पष्ट से शीघ्रकेन्द्र लाकर उस पर से लाये गये शीघ्रफल का संस्कार मन्दस्पष्ट में करने पर स्पष्ट ग्रह होता है।

5.6 पारिभाषिक शब्दावली

पंच ताराग्रह – भौम, बुध, गुरु, शुक्र एवं शनि को पंचतारा ग्रह कहते है।

ग्रहस्पष्टीकरण – गणितागत मध्यम गतिस्थिति द्वारा ग्रह की स्पष्ट गतिस्थिति का निरूपण ही '**ग्रहस्पष्टीकरण**' है। ग्रहाणां स्पष्टीकरणं ग्रहस्पष्टीकरणम्। अर्थात् ग्रहों की गणितीय स्पष्टीकरण की क्रिया ग्रहस्पष्टीकरण कहलाती है।

गणितागत – गणितीय क्रिया के द्वारा आया हुआ।

वेधोपलब्ध – वेध-यन्त्रों के द्वारा वेधक्रियोपरान्त उपलब्ध।

आसन्न – सूक्ष्म के नजदीक

आभाषिक – देखने में लगने वाली स्थिति।

रेखादेशीय – लंकादेशीय। जहाँ का अक्षांश शून्य हो, उसे रेखादेश कहते है। यथा – लंकादि।

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सूर्यसिद्धान्त – महावीर प्रसाद श्रीवास्तव

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय/ कपिलेश्वर शास्त्री

भारतीय ज्योतिष – शंकरबालकृष्णदीक्षित

ग्रहगति का क्रमिक विकास – श्रीचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ. सत्यदेव शर्मा

ज्योतिष रहस्य - जगजीवन दास गुप्ता

5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. क
3. ख
4. क
5. घ

6. क

7. क

8. ख

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ग्रहस्पष्टीकरण किसे कहते है? स्पष्ट रूप से लिखिये।
2. ज्योतिष शास्त्र में ग्रहस्पष्टीकरण की क्या आवश्यकता है?
3. ग्रहलाघव के अनुसार स्पष्टसूर्यग्रह का साधन कीजिये?
4. गुरू एवं शुक्र ग्रह का गणितीय साधन कीजिये?
5. सूर्यसिद्धान्त में कथित ग्रहस्फुटीकरण संस्कार का विवेचन कीजिये?